* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

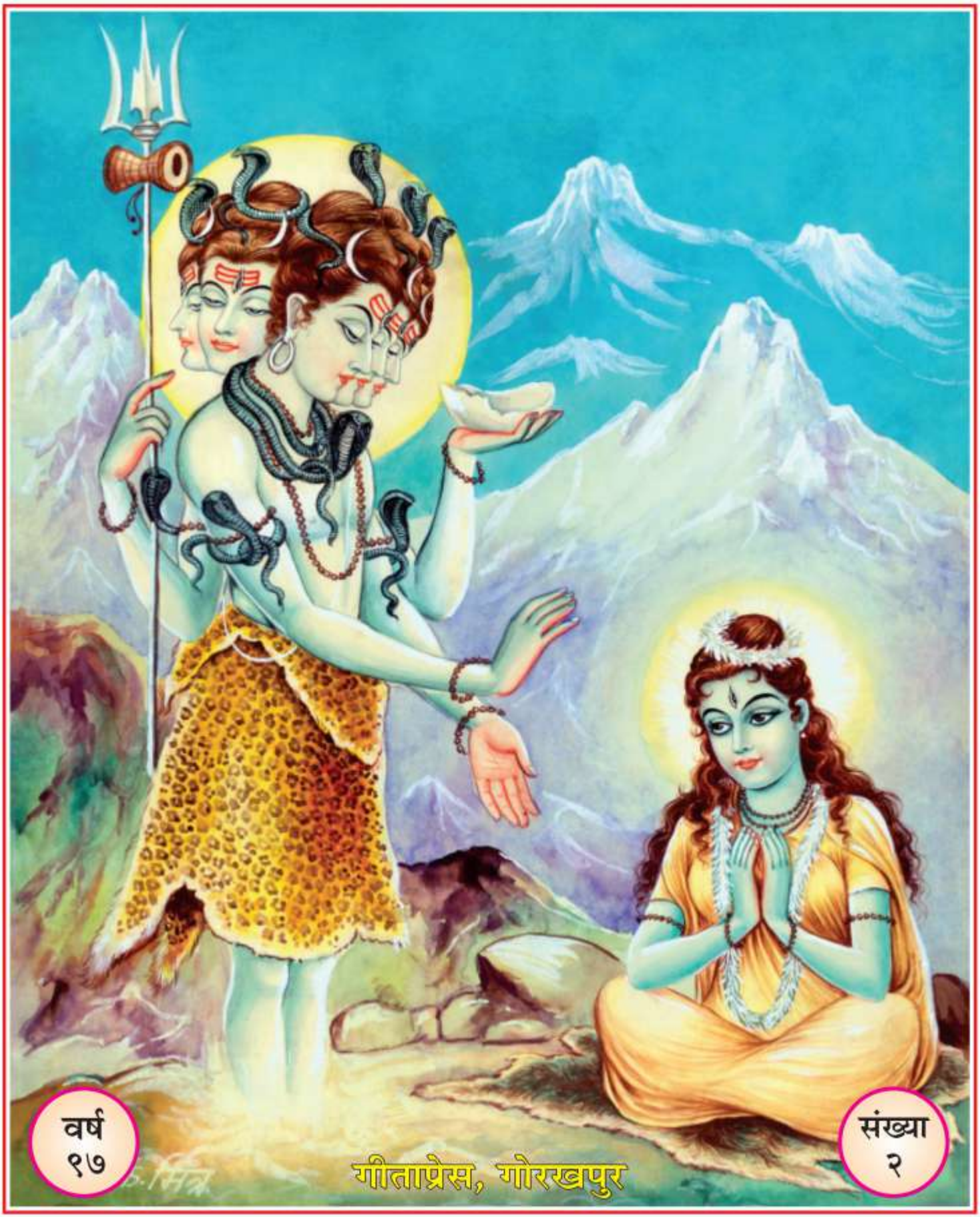

मूल्य १० रुपये

भगवती पार्वतीको शिव-दर्शन

भगवती श्रीसरस्वतीजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, फरवरी २०२३ ई० | संख्या २
पूर्ण संख्या ११५५

भगवती श्रीसरस्वती

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

जो विद्याकी देवी भगवती सरस्वती कुन्दके फूल, चन्द्रमा, हिमराशि और मोतीके हारकी तरह धवल वर्णकी हैं, और जो श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, जिनके हाथमें श्रेष्ठ वीणादण्ड शोभायमान है, जिन्होंने श्वेत कमलपर आसन ग्रहण किया है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर आदि देवताओंद्वारा जो सदा पूजित हैं, वे सम्पूर्ण जड़ता और अज्ञानको दूर कर देनेवाली सरस्वती देवी हमारी रक्षा करें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, फरवरी २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक २

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवती श्रीसरस्वती	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- भगवती श्रीपार्वती [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- भक्त और भगवान्‌का कल्याणकामी विनोद (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- शिव-तत्त्व—एक विमर्श (पूज्य स्वामी श्रीसंवित् सोमगिरिजी महाराज)	९
७- निष्काम भिखारी (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
८- कामनापूर्तिका प्रलोभन ही पराधीनता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१३
९- अविनाशी रस [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१४
१०- भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य (श्रीदिलीपजी देवनानी)	१६
११- मौन-साधना (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	१७
१२- लक्ष्मणजीका अलौकिक सेवाभाव (श्रीविष्णुजी पटवारी)	२०
१३- सरस्वती-वन्दना [**कविता**] (श्रीबालकृष्णजी गर्ग)	२४
१४- शाक्त दर्शन एवं शक्ति-उपासना (प्रो० श्रीरामराजजी उपाध्याय)	२५
१५- भगवान् शिव सबका मंगल करें	२७
१६- अलबेला भक्त—केवट (श्रीदयानन्दजी यादव)	२८
१७- श्रीरामचरितमानस—साहित्य ग्रन्थ ही नहीं, मन्त्रोंकी खान भी (डॉ० श्रीरमेश नारायणजी पुरोहित)	३१
१८- हिन्दूका वैशिष्ट्य है हिन्दुत्व (प्रो० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम')	३३
१९- कष्टोंका मूल्य [**बोधकथा**]	३५
२०- परम भागवत राजा अम्बरीष [**भक्त-गाथा**] (श्रीलालजी मिश्र)	३६
२१- सच्चा सन्त [**बोधकथा**]	३८
२२- कामरूप और माँ कामाख्या [**तीर्थ-दर्शन**] (डॉ० श्रीश्यामबाबूजी शर्मा)	३९
२३- भारतके बारह प्रधान देवी-विग्रह और उनके स्थान	४१
२४- सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी' में गो-चिन्तन [**गो-चिन्तन**] (श्रीबद्रीनारायणजी विश्नोई)	४२
२५- व्रतोत्सव-पर्व [**चैत्रमासके व्रत-पर्व**]	४३
२६- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
२७- कृपानुभूति	४५
२८- पढ़ो, समझो और करो	४७
२९- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवती पार्वतीको शिव-दर्शन	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवती श्रीसरस्वतीजी	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- भगवती पार्वतीको शिव-दर्शन	(इकरंगा)	७
४- सुदर्शन चक्रसे भयभीत दुर्वासा	(,,)	३७
५- भगवान् विष्णु और दुर्वासाका संवाद	(,,)	३८
६- कामाख्या-मन्दिर, कामरूप (असम)	(,,)	३९

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे/एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।

॥ श्रीहरिः ॥

हमें परमात्माने दस इन्द्रियाँ दी हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) तथा पाँच ही कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, जीभ, गुदा और जननेन्द्रिय)। ज्ञानेन्द्रियाँ हमतक संसारोपयोगी जानकारी पहुँचाती हैं और कर्मेन्द्रियोंसे हम संसारके काम पूरे करते रहते हैं। इसी प्रकार यह मनुष्यदेह संसार-यात्रा पूरी करके समाप्त हो जाता है।

यदि गौर करें तो इन इन्द्रियोंमें एक इन्द्रिय—जीभ (जिह्वा) ऐसी है, जो स्वाद ग्रहण करनेमें ज्ञानेन्द्रिय और बोलनेमें कर्मेन्द्रिय होती है। अतः कल्याणकामी साधक यदि इन्द्रिय-संयमका अभ्यास करे, तो उसे जिह्वा (जीभ)-से प्रारम्भ करना चाहिये। जिह्वाके संयमसे एक साथ दो इन्द्रियोंका संयम हो जाता है।

श्रद्धेय सेठजी अपनी भोजनकी थालीमें तीन ही वस्तुएँ लेते थे, चाहे रसोईमें कितने ही व्यंजन बने हों। इसी प्रकार मैंने एक गृहस्थ सन्तको क्रोधके समय सदा मौन रहते देखा। यदि खाते और बोलते समय हम सावधान रहनेका अभ्यास करें, तो अनेक उपद्रवोंसे बचा जा सकता है।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

कल्याण

याद रखो—किसीके दोषोंका बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करके, उसके दोषोंकी बहुत कड़ी आलोचना करके, दोषोंके लिये जनसमूहमें उसे बदनाम करके यदि तुम यह आशा रखते हो कि तुम्हारे ऐसा करनेसे वह दोषमुक्त हो जायगा, तो यह तुम्हारी बड़ी भूल है। प्रथम तो यही निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि तुम जो किसीमें जितने और जैसे दोषोंकी कल्पना करते हो, देखते हो, वे उसमें हैं या नहीं। हो सकता है कि तुम्हारी धारणा भ्रान्त हो, मत-विरोध होनेसे तुम्हें वैसा प्रतीत होता हो, भिन्न परिस्थितिके कारण तुम्हें वैसा दीखता हो अथवा द्वेषके कारण दोषबुद्धिसे दोष दिखायी देते हों। यदि ऐसी बात है, तब तो तुम उसकी निन्दा करके नया पाप कर रहे हो, उसके मनमें द्वेषका अंकुर पैदा करके उसके भावी जीवनको अशान्त बना रहे हो। इसलिये पहले अपने दोषोंको देखो, फिर किसी दूसरेके दोषोंकी ओर दृष्टि डालो। आलोचना, निन्दा तथा अपशब्दोंके द्वारा किसीका जी दुखानेसे तो सदा बचे ही रहो।

याद रखो—यदि किसी अंशमें किसीमें कोई दोष हो भी, तो क्या तुम्हारेमें कोई दोष नहीं है? और उसकी कड़ी आलोचना या निन्दा करके अथवा उसके प्रति नीच शब्दोंका प्रयोग करके क्या तुम भी भयानक दोष नहीं कर रहे हो?

याद रखो—किसीके दोषोंका बखान करना, उसे दोषी सिद्ध करके लोगोंकी दृष्टिमें उसे गिरानेका प्रयत्न करना—उसके दोषोंको न केवल दृढ़ करनेमें ही कारण नहीं होता, वरं उसके दोषोंके स्वरूपको और भी भीषण बनाने और दोषोंकी संख्या बढ़ानेमें भी कारण होता है। किसीको दोषी साबित करके उस दोषको सदाके लिये उसके पल्ले मत बाँध दो। उसको निर्दोष बनानेके लिये उसे अपनाकर, उससे प्रेमकर, उसके दुःखमें सच्ची सहानुभूति प्रकटकर और उसके थोड़ेसे भी सच्चे गुणोंकी सच्ची प्रशंसा करके ऐसी सुन्दर स्थिति उत्पन्न कर दो कि जिसमें वह तुमको अपना हितैषी—सुहृद् समझे और तुम्हारा प्रेमभरा संकेत पाते ही नाकसे बलगम छींक फेंकनेकी भाँति सहज ही अपने दोषको निकाल फेंके और उस स्थितिमें आराम—

याद रखो—तुम यदि किसीकी कड़ी आलोचना करते हो, उसकी निन्दा करते हो और द्वेष-द्रोह तथा अपमानभरी कटु वाणीसे किसीको लांछित करनेका प्रयत्न करते हो—और तुम्हारी इस दूषित वाणीको सुनकर सुननेवाले लोग प्रसन्न होते हैं, तालियाँ पीटकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, तुम्हारी प्रशंसा करते और तुम्हें वाहवाही देते हैं, तो समझ लो कि तुमने जनताके मानस-स्तरको नीचे तो गिरा ही दिया है, साथ ही निर्दोष मनुष्योंके मानस-धरातलपर द्वेषकी धार बहाकर उन्हें दूषित कर रहे हो, सुन्दर सरल निर्मल मानस-क्षेत्रोंमें विष-बीजोंका वपन करके भयानक विषमय फल उपजाने जा रहे हो, लोगोंमें द्वेष-द्रोहका विस्तारकर उनमें वैर-विरोध और क्रोध-हिंसाका प्रचार-प्रसार कर रहे हो, जगत्में शत्रुभावका विषाक्त वातावरण उत्पन्न करके प्रकृतिमें भीषण विक्षोभ उत्पन्न कर रहे हो और परिणाममें जगत्के प्राणिसमुदायको नरकानलकी भीषण लपटोंमें जलानेका आयोजन कर रहे हो। सोचो, तुम अभिमानके मारे कितना बड़ा पाप कर रहे हो।

याद रखो—इससे तुम्हारा कभी कल्याण न होगा, चाहे तुम अज्ञानवश अपनेको कितना ही अधिक कल्याणमें हेतु मानते रहो और तुम जिस जगत्का कल्याण करना चाहते हो, उसका भी कल्याण नहीं होगा। ऐसा करना तो मानो विषबेलिका विस्तार करके उससे मधुर अमृत-फल चाहना है।

याद रखो—दोनों ओर खड़े हुए लोग बीचकी प्रबल जलधाराके भयसे नहीं मिल पाते—उनको मिलानेके लिये उस जलधारापर पुल बाँधनेवाले, बीचकी गहरी और चौड़ी दरारको भरकर सुन्दर मार्गका निर्माण करनेवाले और जैसे धागा अपना प्रिय अंग देकर सूईके किये हुए छेदको भर देता है, वैसे ही अपना बलिदान करके दूसरोंके छिद्रोंको छिपा देनेवाले लोग ही प्रेमका यथार्थ विस्तार करके द्वेष-वैर और हिंसा-प्रतिहिंसाकी ज्वालासे जलते हुए जगत्को सुख-शान्तिकी सुधाधारासे आप्लावितकर उसका सच्चा हित कर सकते हैं और

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती पार्वतीको शिव-दर्शन

भगवती श्रीपार्वती भगवान् शिवकी आदिशक्ति हैं, उन्होंने जहाँ विनय और प्रेमकी प्रतिमूर्ति होकर पतिके आधे अंगमें स्थान प्राप्त किया, उन्हें अर्धनारीश्वर बनाया; वहीं स्वामीको अपनी विराट् शक्ति देकर मृत्युंजयके रूपमें प्रतिष्ठित किया। भगवती श्रीपार्वतीने अपने दोनों पुत्रोंको सेनानी और गणाध्यक्ष बनाया तथा स्वयं भी लोक-कल्याणके लिये शस्त्र उठाकर चण्ड-मुण्डविनाशिनी चामुण्डा बनीं। वेद, उपनिषद्, पुराण सभी उनकी अनन्त महिमाका गान करते हैं।

भगवती पार्वती अपने पूर्वजन्ममें दक्षप्रजापतिकी कन्या सतीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। उस समय भी उन्हें भगवान् शंकरकी प्रियतमा होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। दक्ष-यज्ञमें अपने पति भगवान् शिवके अपमानसे क्षुब्ध होकर योगाग्निमें उन्होंने अपने शरीरका त्याग कर दिया। सतीने देहत्याग करते समय यह संकल्प किया कि 'मैं पर्वतराज हिमालयके यहाँ जन्म ग्रहणकर पुन: भगवान् शिवकी अर्धांगिनी बनूँ।' भला जगदम्बाका संकल्प कभी अन्यथा हो सकता है! वे समय पाकर हिमालय-पत्नी मैनाके गर्भमें प्रविष्ट हुईं और यथासमय उनका प्राकट्य हुआ। पर्वतराजकी पुत्री होनेके कारण वे पार्वती कहलायीं। जब वे कुछ सयानी हुईं तो उनके माता-पिता उनके अनुरूप वरके लिये चिन्तित रहने लगे। एक दिन अकस्मात् देवर्षि नारद हिमवान्के घर पधारे। पर्वतराजने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया उन्होंने अपनी लाडली पुत्री पार्वतीको भी बुलाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम करवाया तथा उनसे अपनी पुत्रीके भविष्यके विषयमें कुछ बतानेकी प्रार्थना की।

नारदजीने हँसकर कहा—'गिरिराज! तुम्हारी पुत्री सब गुणोंकी खान है। आगे चलकर यह उमा, अम्बिका और भवानी आदि नामोंसे प्रसिद्ध होगी। यह अपने पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी होगी तथा इसका सुहाग अचल रहेगा, किंतु इसको माता-पितासे रहित, उदासीन तथा अमंगल वेशवाला पति मिलेगा। मैंने वरके जितने दोष बताये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं। यदि तुम्हारी कन्या भगवान् शिवकी तपस्या करे और वे प्रसन्न होकर इससे विवाहके लिये तैयार हो जायँ तो इसका सभी तरहसे कल्याण होगा।'

देवर्षि नारदके उपदेशको हृदयमें धारणकर भगवती पार्वतीने भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या करनेका निर्णय लिया और माता-पिताके मना करनेपर भी उन्होंने हिमालयके सुन्दर शिखरपर कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। उनकी कठोर तपस्याको देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी दंग रह गये। अन्तमें भगवान् आशुतोषका आसन हिला। उन्होंने पहले पार्वतीकी परीक्षाके लिये सप्तर्षियोंको भेजा और पीछे वटुकवेशमें स्वयं आये। पार्वतीकी अविचल निष्ठाको देखकर शिवजी अपनेको अधिक देरतक न छिपा सके और असली रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये। भगवती पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई और उन्हें शिवजीसे पाणिग्रहणका वरदान मिला। पार्वतीजी तपस्या पूर्ण करके घर लौट आयीं और अपने माता-पिताको उन्होंने शंकरजीके प्रकट होने तथा वरदान देनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

भक्त और भगवान्‌का कल्याणकामी विनोद

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌के एक निष्कामी भक्त जगत्‌के परम हितैषी थे। वे सदा-सर्वदा जगत्‌के हितमें रत रहा करते थे। इसके फलस्वरूप एक दिन भगवान् स्वयं उनको दर्शन देनेके लिये उनके सामने प्रकट हुए और बोले—'तुम्हारी जो इच्छा हो वही वर माँगो।'

भक्तने कहा—'भगवन्! आपकी मुझपर जो अनन्त कृपा है, इससे बढ़कर और कौन-सी वस्तु है, जिसकी मैं याचना करूँ—आपकी कृपासे मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है।'

भगवान्‌ने विशेष आग्रहपूर्वक कहा—'मेरे सन्तोषके लिये तुम्हें कुछ तो अवश्य ही माँगना चाहिये।'

भक्तने कहा—'प्रभो! यदि आपका इतना आग्रह है, तो मैं यही चाहता हूँ कि मेरे मनमें यदि कुछ माँगनेकी इच्छा हो तो आप उसका सर्वथा विनाश कर दीजिये।'

भगवान् बोले—'यह तो तुमने कुछ भी नहीं माँगा। मेरी प्रसन्नताके लिये तुम्हें अवश्य कुछ माँगना पड़ेगा। तुम जो चाहो सो माँग सकते हो।'

भक्तने कहा—'जब आप इतना बाध्य करते हैं तो मैं यह माँगता हूँ कि आप संसारके सभी जीवोंका कल्याण कर दीजिये।'

भगवान्‌ने कहा—'यदि सब जीवोंका कल्याण कर दिया जाय तो उनके किये हुए पापोंका फल कौन भोगेगा?'

भक्तने कहा—'प्रभो! सबके पापोंका फल मुझे भुगता दीजिये।'

भगवान् बोले—'तुम-सरीखे भक्तको सब जीवोंके पापोंका दण्ड कैसे भुगताया जा सकता है?'

भक्तने कहा—'तो फिर सबको क्षमा कर दीजिये।'

भगवान्‌ने कहा—'इस प्रकार सबको पापोंका फल न भुगताकर उन्हें क्षमा कर देना तो सम्भव नहीं है।'

भक्तने कहा—असम्भव भी तो नहीं है; क्योंकि जब एककी मुक्ति होती है, तब इसी न्यायसे सबकी भी हो सकती है। 'भगवन्! आप तो असम्भवको भी सम्भव करनेवाले सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं।'**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः**' हैं। आपके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।'

भगवान्‌ने कहा—'इस प्रकार करनेके लिये मैं असमर्थ हूँ।'

भक्तने कहा—'यदि आप अपनेको असमर्थ कहते हैं, तो फिर आपने इच्छानुसार वर माँगनेके लिये इतना आग्रह क्यों किया था? आपको स्त्री, पुत्र, धन, मान-बड़ाई, स्वर्ग, मोक्ष आदि किसी एक वस्तुके माँगनेके लिये कहना चाहिये था। जो इच्छा हो, सो माँगनेका वचन देनेपर तो याचककी माँग पूरी करनी चाहिये।'

भगवान्‌ने कहा—'भाई! मेरी हार और तुम्हारी जीत हुई, मैं भक्तोंके सामने सदा ही हारा हुआ हूँ।'

भक्तने कहा—'प्रभो! हार तो मेरी हुई। जीत तो तब होती, जब आप सबका कल्याण कर देते।'

भगवान्‌ने कहा—'तुम्हारे इस निःस्वार्थभावसे मैं अति प्रसन्न हुआ हूँ। मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि जैसे मेरे दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, स्मरण तथा नाम-गुणोंके कीर्तनसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, वैसे ही जो कोई भी तुम्हारा दर्शन, स्पर्श और चिन्तन आदि करेगा, उसका भी कल्याण हो जायगा।'

इस प्रकार संसारका कल्याण चाहनेवाले निःस्वार्थ भक्तको विनोदमें भगवान्‌से भी बढ़कर कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। अतएव कल्याणकामी पुरुषोंको निःस्वार्थभावसे लोकहितार्थ ही सारे कर्म करने चाहिये

ये मुक्तावपि निःस्पृहाः प्रतिपदप्रोन्मीलदानन्ददां यामास्थाय समस्तमस्तकमणिं कुर्वन्ति यं स्वे वशे।
तान् भक्तानपि तां च भक्तिमपि तं भक्तिप्रियं श्रीहरिं वन्दे सन्ततमर्थयेऽनुदिवसं नित्यं शरण्यं भजे॥

मुक्तिके विषयमें भी निःस्पृह रहनेवाले जो भक्त, पद-पदपर आनन्द देनेवाली, जिस भक्तिका आश्रय लेकर जिन सबके चूड़ामणि भक्तिप्रिय श्रीहरिको अपने वशमें कर लेते हैं; उन भक्त, भक्ति और श्रीभगवान्‌की मैं निरन्तर वन्दना और अभ्यर्थना करता हूँ तथा सर्वदा शरण देनेवाले उन्हीं श्रीहरिको प्रतिदिन भजता हूँ।[भक्तिरत्नावली]

शिव-तत्त्व—एक विमर्श

(पूज्य स्वामी श्रीसंवित् सोमगिरिजी महाराज)

'शिव' नाम सुनते ही मनमें कर्पूर-जैसे गौरवर्ण, देहमें भस्म लगाये हुए, बाघाम्बर पहने हुए, सर्पोंको आभूषण एवं यज्ञोपवीतकी तरह धारण किये हुए, जटाओंमें चन्द्रकलाको एवं गंगाको धारण किये हुए, हाथमें डमरू एवं त्रिशूल लिये हुए, नीले कण्ठ एवं तीन नेत्रवाले दिव्य शरीरका अनायास ध्यान आ जाता है। शिवके साथ ही उनका वाहन श्वेत-धवल वृषभ, उनकी शक्ति पार्वती, उनके पुत्र कार्तिकेय (षडानन—छः मुखवाले) एवं गजानन तथा इन तीनोंके वाहन सिंह, मोर एवं मूषक मन-पटलपर उभरते हैं। साधारणतः सिंहसे वृषभको भय होता है, सर्पको मोरसे भय है, चूहा सर्पका भोजन है। शिवका भाल-नेत्र अग्निरूप है, दाहिना नेत्र सूर्य है एवं वाम नेत्र चन्द्रमा है, शिवकी जटामें गंगा एवं चन्द्रमा हैं, शिवके कण्ठमें विष है, शिवका बायाँ अर्धभाग गौरी-रूप है और वे कामदेवका दहन करनेवाले भी हैं और आश्चर्य यह कि वे विष्णुके मोहिनीरूपपर आसक्त भी हो जाते हैं। श्मशानमें क्रीड़ा करनेवाले, भूत-प्रेतगणोंके साथ रहनेवाले, कपालोंकी माला पहने हुए दिगम्बर शिव, अपने भ्रू-विक्षेपसे देवताओंको समस्त ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। शिवके रूपमें, पहनावेमें, चर्यामें, व्यवहारमें, परिवारमें, अनेक विरोधी तत्त्व देखनेमें आते हैं और वे सभी तत्त्व एक समरसमें रहते हैं; क्योंकि शिव स्वयं समरस-मूर्ति हैं। वे अखण्ड-अद्वैत स्वरूप होते हुए समस्त द्वैतको द्वितीयाके चन्द्ररूपमें अपनी जटाओंमें धारण किये रहते हैं। वे द्वन्द्वातीत होकर सभी द्वन्द्वोंको अपनाते हैं। शिवकी अनन्त करुणामें सभी विरोध, सभी विषमताएँ आश्रय पाकर सामरस्यकी ओर अग्रसर होती हैं। शिवके विभिन्न रूप एवं शिव-लीलाएँ भी रोचक, रहस्यमयी, गूढ़ तथा आश्चर्यमयी हैं एवं शिव-तत्त्वको, शिव-महिमाको प्रकट करती हैं।

शिव स्वरूपतः परब्रह्म हैं। वे नित्य शुद्ध-बुद्ध-सजातीय, विजातीय, स्वगतभेद नहीं है। माण्डूक्य-उपनिषद्में शिवका ओंकाररूपसे प्रतिपादन है। इस उपनिषद्के सातवें मन्त्रमें कहा है—'वह ओंकार न अन्तःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है, न उभयतः प्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है, वह अदृष्ट है, अव्यवहार्य है, अग्राह्य है, अलक्षण है, अचिन्त्य है, अव्यपदेश्य है, एकात्मप्रत्ययसार है, प्रपंचोपशम है, शान्त है, शिव है, अद्वैत है, तुरीय है, आत्मा है, उसको अनुभव कर लेना चाहिये। निर्गुण, निराकार, निष्क्रिय शिव ही अपनी अचिन्त्य, अनिर्वचनीय शक्तिका प्रयोग करके सगुण-निराकार एवं सगुण-साकार बनते हैं। वे ही जीव-जगत् रूपसे प्रतिभासित होते हैं। अपनी शक्तिका प्रयोग करते हुए वे ईश्वर कहलाते हैं। वे जगत्की सृष्टि, स्थिति, लय करते हुए क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश कहे जाते हैं। इन तीन कृत्योंके अलावा उनके दो कृत्य और हैं—निग्रह करना अर्थात् जीवको अज्ञान-अवस्थामें बाँधकर रखना, अनुग्रह करना अर्थात् जीवको स्वरूपबोध (मुक्ति)-की ओर ले जाना। ये दो कृत्य करते हुए वे क्रमशः ईश्वर एवं सदाशिव कहे जाते हैं। वेदमें सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह, अनुग्रह—इन पंचकृत्योंको करनेवाले शिव-रूपोंको क्रमशः सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान कहा गया है। जिस ज्ञानको लेकर शिव पंचकृत्य करते हैं, उनको वेद कहते हैं। वेद परमेश्वरके विवर्त हैं। वेद अनन्त, अनादि, सनातन एवं अपौरुषेय हैं। शिवने वेदको प्रकट किया और वेद ही शिव-स्वरूपके निर्धारणमें परम प्रमाण हैं। वेदमें धर्म एवं ब्रह्मतत्त्वका प्रतिपादन है। जिस विधानको लेकर परब्रह्म शिव स्पन्दित होते हैं, पंचकृत्य करते हैं, उसे धर्म कहते हैं। शिवका वाहन नन्दीश्वर वृषभ धर्म है—'**धर्मो वृषः**।

यह अखिल सृष्टि प्रकट होती है और अपनी अवधि पूर्ण होनेपर महाप्रलयमें लीन हो जाती है। सृष्टि और महाप्रलयका यह क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है

तीनों गुण (सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण) साम्य-अवस्थामें रहते हैं। महाप्रलयकी अवधि पूर्ण होनेपर जब वह परमेश्वर सृष्टि-उन्मुख होता है, तो त्रिगुणोंमें विक्षोभ उत्पन्न होता है। तब विशुद्ध सत्त्वगुणवाली प्रकृतिसे युक्त 'ईश्वर-चैतन्य' एवं मलिन सत्त्वगुणवाली प्रकृतिसे युक्त 'प्राज्ञ' नामक असंख्य जीव प्रकट होते हैं। तमोगुण-प्रधान प्रकृतिसे पाँच तन्मात्राएँ (शब्द-तन्मात्रा, स्पर्श-तन्मात्रा, रूप-तन्मात्रा, रस-तन्मात्रा, गन्ध-तन्मात्रा) प्रकट होती हैं। इन तन्मात्राओं अर्थात् सूक्ष्म पंचमहाभूतोंसे तपे हुए स्वर्णके समान देदीप्यमान अण्डाकार सूक्ष्म ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है। इस सूक्ष्म ब्रह्माण्डमें ही असंख्य जीवोंकी, अव्यक्त वासनाओंसे युक्त हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्माकी एक साथ ही विद्युत्-प्रभाकी तरह अभिव्यक्ति होती है। इसीको मनुस्मृतिमें बताया गया है—

तदण्डमभवद् हैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

वे परब्रह्म ही उपासकोंपर कृपा करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि सगुण रूपोंमें अपने-आपको प्रकट करते हैं एवं नाना प्रकारकी लीलाएँ भी करते हैं।

लयकर्ता महेशकी पूजा त्रिनेत्रधारी चन्द्रशेखर, जटाजूटधारी गंगाधर, कपाल-माला, नागभूषण-त्रिशूल-डमरूधरके रूपमें की जाती है। ये ही नटराज, मृत्युंजय, अर्द्धनारीश्वर आदि रूपोंमें पूजित हैं। किंतु लिंगाकृतिरूपमें की गयी इनकी पूजाको श्रेष्ठ कहा गया है। लिंगके आधारको जलहरी कहा जाता है। यह ब्रह्मशक्तिका प्रतीक है। कहीं-कहीं मन्दिरोंमें इस शक्तिपीठके नीचे विष्णुपीठ एवं उसके नीचे ब्रह्मपीठकी स्थापना की जाती है। भगवान्‌का वाहन नन्दी है और वह धर्मका प्रतीक है। भगवती सती (दक्ष-कन्या)-के पतिरूपसे शिवने दक्ष-यज्ञ-ध्वंसकी लीला की एवं पार्वतीपतिरूपमें शिव गणेश एवं कार्तिकेयके जनक बने एवं विविध लीलाएँ कीं। आज भी उपासकोंके समक्ष प्रभुकी लीलाएँ प्रकट होती हैं।

वह परब्रह्म शिव ही जीव बना है एवं वही जगत् बना है। अतः शिव आत्मारूपसे भी उपास्य है। उस शिवकी अभिव्यक्ति अष्टमूर्तियोंके रूपमें हुई, यथा—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा एवं आत्मा। इन आठ रूपोंमें शिवको क्रमशः शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेव एवं यजमान नामसे जाना जाता है। शाम्भवी मायासे पार जानेके लिये अष्टमूर्ति-उपासना सर्वाधिक उपयुक्त है।

परब्रह्म शिवसे सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमारको प्रबोधित करनेके लिये वटवृक्षके नीचे अवस्थित हो दक्षिणामूर्तिरूपमें उन्हें चिन्मुद्रा दिखायी थी। ये शिवका गुरु-रूप है। आदिगुरु दक्षिणामूर्ति ही ईश्वर, गुरु एवं आत्माको धारण करनेवाले अखण्ड चैतन्य हैं।

जैसे शिव-शक्तिका अभेद है, वैसे ही हर-हरिका अभेद है। अज्ञ लोग ही शिव एवं विष्णुमें भेद करते हैं।

शिव आशुतोष हैं, भोलेनाथ हैं, औढ़रदानी हैं। इनकी उपासना सुकर है। अंजलिभर जल, वनके साधारण फूलोंसे ये सन्तुष्ट हो जाते हैं। बिल्वपत्र, अर्क (आकड़ा) एवं धतूरेके पुष्प इन्हें विशेष प्रिय हैं। शिवकी उपासनामें अभिषेकका विशेष महत्त्व है। इसे रुद्राष्टाध्यायी, शतरुद्री, शिव-अथर्वशीर्ष, कैवल्य-उपनिषद् आदि मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जल, फलोंका रस, पंचामृत आदिकी धाराको शिवलिंगपर डालते हुए सम्पन्न किया जाता है।

प्रत्येक उपास्य देवताके सम्बन्धमें गीता, हृदय, कवच, सहस्त्रनाम और स्तोत्र—ये पाँच प्रकारका साहित्य है। 'कवच' देवताका शरीर, 'गीता' शिरोभाग, 'हृदय' देवताका हृदय, 'सहस्त्रनाम' मुख एवं विविध 'स्तोत्र' देवताके चरण माने जाते हैं। इन पंचांगोंको अपनानेसे उपासना तेजस्वी हो जाती है।

मंत्र-जप एवं ध्यान भी उपासनाकी पूर्णताके लिये आवश्यक है।

विधिवत् की गयी उपासना सद्यःफलदायिनी होती है। निष्काम भावसे की गयी उपासनासे उपासक कैवल्य-मुक्ति पानेका अधिकारी बन जाता है।

['सनातन संस्कृतिका विज्ञान'से साभार

निष्काम भिखारी

(नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जो हमारे प्राणोंके अन्दरकी प्रत्येक क्रियाको जानते हैं, उनके सामने माँगनेके लिये मुँह खोलना बुद्धिमानी नहीं है। भीखकी झोली बगलमें लेकर दरवाजेपर खड़े होते ही वे दया करते हैं। बस, हमें तो चुपचाप उनकी सेवा करनी चाहिये। हम दीन-हीन कंगाल हैं, द्वारपर पड़े रहना ही हमारा कर्तव्य है। उनका कर्तव्य वे जानते हैं, हमें उसके लिये क्यों चिन्ता करनी चाहिये? सेवकका दु:ख-दर्द दूर करना चाहिये, इस बातको प्रभु स्वयं सोचेंगे, हमें तो मनमें भी कुछ नहीं कहना चाहिये। यही निष्काम-भिखारीकी भाषा है। यथार्थ भिखारी तो प्रभुके दर्शन पानेके लिये ही व्याकुल रहता है। उनका दर्शन होनेपर माँगनेकी नौबत ही नहीं आती, सारे अभाव पहले ही मिट जाते हैं, समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भिखारीकी घास-पातकी झोंपड़ी अमूल्य रत्नराशिसे भर जाती है। फिर माँगनेका मौका ही कहाँ रहता है? श्रीमद्भागवतमें कथा है—

सुदामा पण्डित लड़कपनसे ही भगवान् श्रीकृष्णके सखा थे—दोनों मित्र एक ही गुरुजीके यहाँ साथ ही पढ़ा करते थे। विद्या पढ़ लेनेपर दोनोंको अलग होना पड़ा। बहुत दिन बीत गये। परस्पर कभी मिलना नहीं हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाके राजराजेश्वर हुए और गरीब सुदामा अपने गाँवमें भीख माँगकर काम चलाने लगे। सुदामाकी गृहस्थी बड़ी ही कठिनतासे चलती थी। एक दिन उनकी स्त्रीने कहा—'आप इतने बड़े पण्डित होकर भी कुछ कमाई नहीं करते। फिर इस विद्यासे क्या लाभ होगा?' सुदामा बोले, 'ब्राह्मणी! मेरी विद्या इतनी तुच्छ नहीं है कि मैं उसे केवल नगण्य धन कमानेमें लगाऊँ?' इसपर ब्राह्मणी बोली, 'अच्छी बात है, आप इसे धन कमानेमें मत लगाइये! परंतु आप कहा करते हैं 'श्रीकृष्ण मेरे बालमित्र हैं', मिलनेपर तो सहज ही आपको खूब धन मिल सकत है।' सुदामाने कहा, 'तुम तो खूब सलाह दे रही हो भगवान्‌से मेरी मित्रता है, इसलिये क्या मैं उनसे धन माँगूँ? मुझसे ऐसा नहीं होगा। मैं भक्तिको इतनी छोटी चीज नहीं समझता, जो तुच्छ धनके बदलेमें उड़ा दी जाय! तुम पगली हो गयी हो, इसीसे ऐसा कह रही हो।' ब्राह्मणी बोली, 'स्वामिन्! मैं कहाँ कहती हूँ कि आप उनके पास जाकर धन माँगें। मैं तो यही कहती हूँ, जब वे आपके बालसखा हैं, तब एक बार उनसे मिलनेमें क्या हानि है? आप उनसे कुछ भी माँगियेगा नहीं।' स्त्रीके बहुत समझाने-बुझानेपर सुदामाने सोचा कि चलो, इसी बहाने मित्रके दर्शन तो होंगे और वे वहाँसे चल पड़े। थोड़ेसे चिउड़ोंकी कनी पल्ले बाँध ली।

सुदामाजी द्वारकाजी पहुँचे। वहाँके बड़े-बड़े सोनेके महलोंको देखकर उनकी आँखें चौंधिया गयीं। श्रीकृष्णके महलपर पहुँचकर उन्होंने द्वारपालसे कहा कि, 'जाओ, अपने स्वामीसे कह दो कि आपके एक बालसखा मिलने आये हैं।' महलोंकी छटा देखकर गरीब ब्राह्मण सोचने लगा कि कहीं श्रीकृष्ण मुझे भूल तो नहीं गये होंगे। परंतु अन्तर्यामीसे कुछ भी छिपा नहीं था। उनको पता लग गया कि पुराने प्राणसखा सुदामा द्वारपर खड़े हैं। भगवान् पलंगपर लेट रहे थे, श्रीरुक्मिणीजी चरण-सेवा कर रही थीं। भगवान् चमककर उठे और दरवाजेपर खड़े हुए बाल-बन्धुको आदरके साथ अन्दर लिवा लानेके लिये दौड़े। पटरानियाँ भी पीछे-पीछे दौड़ीं।

साधक! तुम उनकी ओर एक पैर आगे बढ़ोगे, तो वे तीन पैर बढ़ेंगे। उनकी अतुल दया ऐसी ही है सखाको साथ लेकर भगवान् अन्त:पुरमें पधारे। पटरानियोंने मिलकर सुदामाके चरण धोये। उन्हें पलंगपर बिठाकर भगवान् स्वयं चमर डुलाने लगे। भगवान्‌ने प्रेमसे कहा,

हो?' सुदामाने लज्जासे सिर नीचा कर लिया। इतने बड़े धनीको चिउड़ोंकी टूटी कनी देते सुदामाको बड़ा संकोच हुआ, परंतु भगवान् श्रीकृष्णने उनकी बगलसे पुटलिया छीन ली और लगे चिउड़ा फाँकने। भक्तके प्रेमभरे उपहारकी वे उपेक्षा क्यों करते? भगवान्ने मुट्ठी फाँककर ज्यों ही दूसरी हाथमें ली, त्यों ही भगवती रुक्मिणीजीने उन्हें रोक लिया। भगवान् मुट्ठी छोड़कर मुसकराने लगे। तदनन्तर वे बोले—

भक्तमाल-रचयिता महाराजा श्रीरघुराजसिंहजी कहते हैं—

ऐसे सुनि प्यारी बचन, जदुनन्दन मुसकाइ।
मन्द मन्द बोले बचन, आनँद उर न समाइ॥
ब्रजमें यशोदा मैया मन्दिरमें माखन औ
मिश्री मही मोहन त्यों मोदक मलाई है।
खायो मैं अनेक बार तैसे मथुरामें आइ,
व्यंजन अनेक मोहि जननी जेंवाई है।
तैसे द्वारिकामें जदुवंशिन के गेह-गेह,
सहित सनेह पायो भोजन में लाई है।
रघुराज आजलों त्रिलोकहुमें मीत ऐसी,
राउर के चाउर ते पाई ना मिठाई है॥
खायो अनेकन यागन भागन मेवा रमा कर वागन दीठे,
देवसमाजके साधुसमाजके लेत निवेदन नाहि उबीठे।
मीत जु साँची कहौ रघुराज इते कस वै भये स्वाद ते सीठे,
पायो नहीं कतहूँ अस मैं जस राउर चाउर लागत मीठे॥

सुदामाके चिउड़ोंकी महिमा वर्णन करनेके बाद सभी सुदामाजीकी सेवामें लग गये। कुछ दिन मित्रके घर रहनेके बाद सुदामाने विदा माँगी। भगवान्ने संकोचसे अनुमति दे दी। ब्राह्मण खाली हाथों लौट चले। घरके पास पहुँचकर ब्राह्मणने देखा तो झोपड़ी नहीं है। वहाँ एक बड़ा सुन्दर महल बना हुआ है। ब्राह्मण सुदामाने सोचा, किसी राजाने जमीन छीनकर महल बनवा लिया होगा। ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई। फूसकी मड़ैया और पतिव्रता ब्राह्मणी भी गयी। इतनेमें सुदामा देखते हैं कि उनकी स्त्री महलके झरोखेमें खड़ी उन्हें पुकार रही है। ब्राह्मणने सोचा, दुष्ट राजाने ही स्त्रीको भी हर लिया है, पर वह बुला क्यों रही है? ब्राह्मण डरकर दौड़े। बड़ी कठिनतासे नौकर उन्हें समझा-बुझाकर घरमें ले गये। गृहिणीने बहुत ही नम्रतासे चरणोंमें प्रणाम करके कहा, 'प्राणेश्वर डरें नहीं! यह अतुल सम्पत्ति आपकी ही है, आपके मित्रने यह आपको भेंट की है।' सुदामा बोले, 'मैंने तो उनसे कुछ माँगा ही नहीं था।' ब्राह्मणीने कहा, 'आपने प्रत्यक्ष नहीं माँगा, इसीसे उन्होंने आपको प्रत्यक्षमें कुछ भी नहीं दिया।' अन्तर्यामी यों ही किया करते हैं। ब्राह्मणकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। प्राणसखाके प्रेमकी स्मृतिसे सुदामा भावावेशसे विह्वल हो गये।

जगत्! देख जाओ, आज इस कंगालके ऐश्वर्यको देख जाओ! जो कल राहका भिखारी था, वही आज रत्नसिंहासनपर आसीन है। देख जाओ! आज पर्णकुटीरमें त्रिभुवनव्यापिनी माधुरी छा रही है। संसार! तुम जिस भिखारीको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे, जिसको पद-दलित समझते थे, देख जाओ, आज वही भिखारी दीनताके रूपको भेदकर अखिल विश्वब्रह्माण्डमें वरणीय हो गया है।

भिखारी! जगत्की चुटकियोंकी ओर न देखो। जगत्के अपमानकी ओर दृष्टि मत डालो। विविध विपत्तियोंसे डरकर मत काँपो। तुम अपना काम अचल चित्तसे किये जाओ। जितने ही बाधा-विघ्न और संकट बढ़ेंगे, उतना ही यह समझो कि तुम्हें गोदमें लेनेके लिये जगत्-जननीका हाथ तुम्हारी ओर बढ़ रहा है। स्नेहमयी माता पुत्रको गोद लेनेसे पहले अँगोछेसे उसके शरीरको रगड़-रगड़कर साफ करती है। साधक! इसी प्रकार जगज्जननी भी तुम्हें गोदमें लेनेसे पूर्व एक बार रगड़ेगी। इस रगड़से घबराना नहीं—डरना नहीं। यह समझना कि इस वेदनासे तुम्हारी यम-वेदना विध्वंस हो गयी है। इस कष्टसे तुम्हारा सारा कष्ट नष्ट हो गया है, अतएव साधक! हताश न होना।

कामनापूर्तिका प्रलोभन ही पराधीनता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! सबसे बड़ा असत् जो जीवनमें ठहरा हुआ है, वह है—शरीरकी ममता। उसकी ममता करनेसे वह पराधीनता ही देगा, इस बातको हम सब जानते हैं। फिर भी हम शरीरको अपना मानते हैं, उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, यह बड़ी भारी पराधीनता है।

भगवान्‌के हम भक्त हो जायँ, जगत्‌से अतीतका जीवन प्राप्त हो जाय, इसमें प्रसन्नता नहीं अनुभव करते। मनकी बात पूरी करनेमें जीवन-बुद्धि रखते हैं। यह जीवनका सबसे काला समय है।

निज-विवेकसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि पराधीनता गुण नहीं, दोष है। कामनापूर्तिका प्रलोभन ही पराधीनता है और यही हमारी निर्बलता है। कामना-अपूर्तिकी वेदना पराधीनतासे मुक्त कराती है।

यह पराधीनता जो जीवनमें आ गयी है कि संसार और परमात्मा मिलकर हमारे मनकी बात पूरी कर दें, अर्थात् दूसरे लोग हमारे काम आ जायँ तो जीवनमें पराधीनता, जड़ता और अभाव रहेगा ही।

परमात्माने हमें सबके काम आनेके लिये बनाया है। हम सबके काम आयें—यदि यह स्वीकार कर लिया जाय तो जीवनमें पराधीनता नहीं रहेगी। परमात्मासे आपकी उत्पत्ति हुई है और आपमें परमात्माकी ही सत्ता है।

यदि हमारा जीवन उस अनन्तके निर्भर हो जाय, तो इसमें हमारी कोई विशेषता नहीं है। वे जैसा चाहें हमारा उपयोग करें। इस निर्भरतामें उनसे आत्मीयता होगी और प्रियताकी अभिव्यक्ति होगी। जिसने हमारा-आपका निर्माण किया है, उसने हमें यह स्वाधीनता भी दी है कि हम दिव्य-चिन्मय जीवनको प्राप्त कर सकते हैं।

वस्तुकी चाह तुम्हारी उपजाई हुई भूल है, उसे तुम मिटा सकते हो। इसका दायित्व तुमपर ही है और किसीपर नहीं। इसे कठिन काम मत समझो। यदि इसे कठिन मानोगे तो वर्तमानमें कभी सिद्धि नहीं मिलेगी।

प्राप्त वस्तुओंके सदुपयोगद्वारा जब साधक व्यक्तियोंकी यथेष्ट सेवा करने लगता है और उसके बदलेमें किसी प्रकारके सुखकी आशा नहीं रखता, यहाँतक कि सेवक कहलानेकी भी जिसमें कामना नहीं है, तब उसका किसी वस्तुसे तथा व्यक्तिसे सम्बन्ध नहीं रहता।

जो कुछ भी चाहता है, उसीका वस्तु—व्यक्ति आदिसे सम्बन्ध रहता है, जिसके रहते हुए न तो निर्विकारता ही प्राप्त होती है और न अहम्‌का ही नाश होता है। विकारोंके रहते हुए पराधीनताका नाश सम्भव नहीं है। पराधीनताका नाश हुए बिना जड़ताका अभाव हो नहीं सकता। उसके हुए बिना चिन्मय जीवनसे अभिन्नता नहीं होती।

अहम्‌का नाश हुए बिना भेदका नाश नहीं होता और उसके हुए बिना अनन्तके प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती। अत: वस्तु, व्यक्ति आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद अनिवार्य है।

सम्बन्ध-विच्छेदसे किसी वस्तु, व्यक्ति आदिकी क्षति नहीं होती और न प्राप्त वस्तुओंके सदुपयोग और व्यक्तियोंकी सेवामें ही बाधा होती है। मंगलमय विधानके अनुसार प्राप्त वस्तुओंके सदुपयोगमें ही आवश्यक वस्तुओंकी उपलब्धि और व्यक्तियोंकी सेवामें ही सर्वात्मभावकी अभिव्यक्ति निहित है। सम्बन्ध-विच्छेद बिना किये न तो प्राप्त वस्तुओंका सदुपयोग ही सम्भव है और न व्यक्तियोंकी सेवा। ॐ आनन्द! [सन्त-उद्‌बोधन]

सर्वं परवशं दु:खं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदु:खयो:॥

पराधीन सब कुछ दु:खरूप है और स्वाधीन सब सुखरूप है—यह संक्षेपसे सुख-दु:खका लक्षण जानना चाहिये। [मनुस्मृति]

साधकोंके प्रति—

अविनाशी रस

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

उपनिषद्में आया है—'**रसो वै सः**' (तैत्तिरीय० २।७) 'वह परमात्मतत्त्व रसस्वरूप है।' तात्पर्य है कि रस वास्तवमें परमात्मतत्त्वमें ही है, जो शान्त, अखण्ड तथा अनन्त है। उस परमात्मतत्त्वका ही अंश होनेसे जीवात्मामें भी वह रस स्वतः स्वाभाविक है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रा०च०मा० ७।११७।२)

परंतु शरीरसे सम्बन्धकी मान्यता मुख्य होनेके कारण जीवात्माको वह रस सांसारिक भोगोंमें, इन्द्रियोंके विषयोंमें दीखने लगता है अर्थात् उसकी भोगोंमें रसबुद्धि हो जाती है। भोगोंका यह रस नाशवान् होता है, जबकि परमात्माका रस अविनाशी होता है। अतः भोगोंका रस तो नीरसतामें बदल जाता है तथा उसका अन्त हो जाता है, पर परमात्माका रस नित्य-निरन्तर सरस रहता है तथा बढ़ता ही रहता है।

भोगोंके रसकी दो अवस्थाएँ होती हैं—संयोग (सम्भोग) और वियोग (विप्रलम्भ)। इनमें संयोग-रसकी अपेक्षा वियोग-रस श्रेष्ठ है; क्योंकि वियोगमें जो रस मिलता है, वह संयोगमें नहीं मिलता। जैसे, जबतक भोजन न मिले, तबतक 'भोजन मिलेगा'—इस (मिलनकी लालसा)-में जो सुख मिलता है, वह भोजन मिलनेपर नहीं रहता, प्रत्युत प्रत्येक ग्रासमें क्षीण होते-होते अन्तमें सर्वथा मिट जाता है और भोजनसे अरुचि पैदा हो जाती है! परंतु परमात्माका रस इससे बहुत विलक्षण है। वह संयोग और वियोग—दोनों ही अवस्थाओंमें समानरूपसे बढ़ता ही रहता है, न तो घटता है और न मिटता ही है।

भोगोंकी सत्ता और महत्ता माननेसे भीतरमें भोगोंके प्रति एक सूक्ष्म आकर्षण, प्रियता, मिठास पैदा होती है, उसका नाम 'रस' है। किसी लोभी व्यक्तिको रुपये मिल जायँ और कामी व्यक्तिको स्त्री मिल जाय तो भीतर-ही-भीतर एक खुशी आती है, यही 'रस' है। भोग भोगनेके बाद मनुष्य कहता है कि 'बड़ा मजा आया'—ग्रन्थि)-में रहता है। इसी रसका स्थूल रूप राग, सुखासक्ति है।

जबतक रसबुद्धि रहती है, तबतक प्रकृति और उसके कार्य (क्रिया और पदार्थ)-की पराधीनता रहती है। रसबुद्धि निवृत्त होनेपर पराधीनता मिट जाती है, भोगोंके सुखकी परवशता नहीं रहती, भीतरसे भोगोंकी गुलामी नहीं रहती।

भोगोंके रसमें जननेन्द्रियका रस बड़ा प्रबल माना गया है। इसलिये कामको जीतना बड़ा कठिन होता है। संसारमें रुपयोंके विषयमें ईमानदार आदमी तो मिल सकते हैं, पर स्त्रीके विषयमें ईमानदार आदमी मिलना अपेक्षाकृत कठिन है। ईमानदार आदमी किसीके लाखों रुपये अपने पास सुरक्षित रख सकता है, पर किसीकी स्त्रीको अपने पास सुरक्षित रखना, विचलित न होना बहुत कठिन है। भर्तृहरिजी लिखते हैं—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरे॥

'जो वायु-भक्षण करके, जल पीकर और सूखे पत्ते खाकर रहते थे, वे विश्वामित्र, पराशर आदि भी सुन्दर स्त्रियोंके मुखको देखकर मोहको प्राप्त हो गये, फिर जो लोग शाली धान्य (साठी चावल)-को घी, दूध और दहीके साथ खाते हैं, वे यदि अपनी इन्द्रियका निग्रह कर सकें, तो मानो विन्ध्याचल पर्वत समुद्रपर तैरने लगा!'

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित् प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किंतु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः॥

'इस पृथ्वीपर कुछ लोग तो मतवाले हाथीके मस्तक विदीर्ण करनेमें शूर हैं और कुछ लोग प्रचण्ड सिंहको मारनेमें दक्ष हैं। परंतु ऐसे बलवान् पुरुषोंके

चूर्ण करनेवाले पुरुष विरले ही हैं।'

ऐसी प्रबल जननेन्द्रियका रस भी रसबुद्धि निवृत्त होनेपर सर्वथा नष्ट हो जाता है! कारण कि काम कितना ही प्रबल क्यों न हो, है तो वह नाशवान् ही! कामको जीतना कठिन तो हो सकता है, पर असम्भव नहीं। कठिन भी उसीके लिये है, जिसने शरीरादि उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंकी सत्ता और महत्ता मान रखी है। अगर साधक शरीरमें अपनी स्थिति मानेगा, तो उसको काम सतायेगा ही। यदि वह स्वरूप (सत्तामात्र)-में अपनी वास्तविक स्थितिको पहचान ले, तो काम नष्ट हो जायगा; क्योंकि स्वरूप (सत्तामात्र)-में काम, क्रोध आदि विकार नहीं हैं। कारण कि स्वरूपमें कोई कमी है ही नहीं, वह पूर्ण है, फिर उसमें काम कैसे आयेगा?

रसबुद्धिके रहते हुए जब भोगोंकी प्राप्ति होती है, तब मनुष्यका चित्त पिघल जाता है तथा वह भोगोंके वशीभूत हो जाता है, परंतु रसबुद्धि निवृत्त होनेके बाद जब भोगोंकी प्राप्ति होती है, तब तत्त्वज्ञ महापुरुषके चित्तमें किंचिन्मात्र भी कोई विकार पैदा नहीं होता। उसके भीतर ऐसी कोई वृत्ति पैदा नहीं होती, जिससे भोग उसको अपनी ओर खींच सके। जैसे पशुके आगे रुपयोंकी थैली रख दें तो उसमें लोभ-वृत्ति पैदा नहीं होती और सुन्दर स्त्रीको देखकर उसमें काम-वृत्ति पैदा नहीं होती। पशु तो रुपयोंको और स्त्रीको जानता नहीं, पर तत्त्वज्ञ महापुरुष रुपयोंको भी जानता है और स्त्रीको भी! जैसे हम अँगुलीसे शरीरके किसी अंगको खुजलाते हैं, तो खुजली मिटनेपर अँगुलीमें कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई विकृति नहीं आती, ऐसे ही इन्द्रियोंसे विषयोंक सेवन होनेपर भी तत्त्वज्ञके चित्तमें कोई विकार नही आता, वह ज्यों-का-त्यों निर्विकार रहता है। कारण कि रसबुद्धि निवृत्त हो जानेसे वह अपने सुखके लिये किसी विषयमें प्रवृत्त होता ही नहीं। उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति दूसरोंके हित और सुखके लिये ही होती है। अपने सुखके लिये किया गया विषयोंका चिन्तन भी पतन करनेवाला हो जाता है[1] और अपने सुखके लिये न किय गया विषयोंका सेवन भी मुक्ति देनेवाला हो जाता है।[2]

जबतक अन्तःकरणमें किंचिन्मात्र भी भोगोंकी सत्ता और महत्ता रहती है, भोगोंमें रसबुद्धि रहती है, तबतक परमात्माका अलौकिक रस प्रकट नहीं होता बाहरसे इन्द्रियोंका विषयोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेपर अर्थात् भोगोंका त्याग करनेपर भी भीतरमें रसबुद्धि बनी रहती है। तत्त्वबोध होनेपर यह रसबुद्धि सूख जाती है, निवृत्त हो जाती है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(गीता २।५९)

'निराहारी[3] (इन्द्रियोंको विषयोंसे हटानेवाले) मनुष्यके भी विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर रसबुद्धि निवृत्त नही होती। परंतु परमात्मतत्त्वका अनुभव होनेपर इस स्थितप्रज्ञ मनुष्यकी रसबुद्धि भी निवृत्त हो जाती है।'

तात्पर्य है कि जब संसारसे अपनी भिन्नता तथ परमात्मासे अपनी अभिन्नताका अनुभव हो जाता है, तब नाशवान् (संयोगजन्य) रसकी निवृत्ति हो जाती है

---

१. ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (गीता २।६२-६३)
'विषयोंका चिन्तन करनेवाले मनुष्यकी उन विषयोंमें आसक्ति पैदा हो जाती है। आसक्तिसे कामना पैदा होती है। कामनासे क्रोध पैदा होत है। क्रोध होनेपर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है। सम्मोहसे स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति भ्रष्ट होनेपर बुद्धिका नाश हो जाता है। बुद्धिक नाश होनेपर मनुष्यका पतन हो जाता है।'

२. रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ (गीता २।६४-६५)
'वशीभूत अन्तःकरणवाला साधक राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका सेवन करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त हो जाता है। प्रसन्नता प्राप्त होनेपर साधकके सम्पूर्ण दुःखोंका नाश हो जाता है और ऐसे प्रसन्न चित्तवाले साधककी बुद्धि निःसन्देह बहुत जल्दी परमात्मामें स्थिर हो जाती है।'

नाशवान् रसकी निवृत्ति होनेपर अविनाशी (शान्त, अखण्ड तथा अनन्त) रसकी जागृति हो जाती है।

तत्त्वबोध होनेपर तो रस सर्वथा निवृत्त हो ही जाता है, पर तत्त्वबोध होनेसे पहले भी उसकी उपेक्षासे, विचारसे, सत्संगसे, संतकृपासे रस निवृत्त हो सकता है। जिनकी रसबुद्धि निवृत्त हो चुकी है, ऐसे तत्त्वज्ञ महापुरुषके संगसे भी रस निवृत्त हो जाता है।

कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग—तीनों साधनोंसे नाशवान् रसकी निवृत्ति हो जाती है। जब कर्मयोगमे सेवाका रस, ज्ञानयोगमें तत्त्वके अनुभवका रस और भक्तियोगमें भगवत्स्मरणका रस मिलने लगता है, तब नाशवान् रस स्वतः छूट जाता है। जैसे बचपनमे खिलौनोंमें रस मिलता था, पर बड़े होनेपर जब रुपयोंमे रस मिलने लगता है, तब खिलौनोंका रस स्वतः छूट जात है, ऐसे ही साधनका रस मिलनेपर भोगोंका रस स्वतः छूट जाता है।

भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य

(श्रीदिलीपजी देवनानी)

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके दूसरे अध्यायमें भगवद्भक्तिका माहात्म्य कहा गया है, जो बड़ा ही उत्तम है।

मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्तिसे आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि होती है। भक्ति होते ही ज्ञान-वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है। अगर मनुष्यके जीवनमें धर्म-पालन तो हो, परंतु भगवान्‌की लीला-कथामें अनुराग न हो, तो उसका धर्मपालन केवल श्रममात्र है। अपने-अपने वर्ण-आश्रमके अनुसार, मनुष्य जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें है कि भगवान् प्रसन्न हों। इसलिये एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान्‌का ही नित्य-निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये। कर्मोंकी गाँठें बड़ी कड़ी हैं, विचारवान् पुरुष भगवान्‌के चिन्तनकी तलवारसे उस गाँठको काट डालते हैं। पवित्र तीर्थोंका सेवन करनेसे महत्सेवा, तदनन्तर श्रवणकी इच्छा, फिर श्रद्धा; तत्पश्चात् भगवत्कथामें रुचि होती है। भगवान् श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले हैं। कथा-श्रवणसे अशुभ वासनाओंका नाश होता है। भगवद्भक्तोंका निरन्तर संग मिलनेसे पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति स्थायी प्रेमकी प्राप्ति होती है। चित्त सत्त्वगुणमें स्थित और निर्मल हो जाता है। इस प्रकार भगवान्‌की प्रेममयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवान्‌के तत्त्वका अनुभव अपने-आप हो जाता है। हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्‌क साक्षात्कार होते ही हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है इसीसे बुद्धिमान् लोग नित्य-निरन्तर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसादकी प्राप्ति होती है। वेदोंका तात्पर्य श्रीकृष्णमें ही है। यज्ञोंके उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं। योग श्रीकृष्णके लिये किये जाते हैं और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति श्रीकृष्णमें ही है ज्ञानसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णकी ही प्राप्ति होती है, तपस्या श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही की जाती है। श्रीकृष्णके लिये ही धर्मोंका अनुष्ठान होता है और सब गतियाँ श्रीकृष्णमें ही समा जाती हैं। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत हैं; फिर भी अपनी गुणमयी मायासे जो प्रपंचकी दृष्टिसे है, तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं; उस मायासे उन्होंने ही सर्गके आदिमें इस संसारकी रचना की थी। सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण उस मायाके विलास हैं। इनके भीतर रहकर भगवान् इनसे युक्त-सरीखे मालूम पड़ते हैं। वास्तवमें तो वे परिपूर्ण विज्ञानानन्दघन हैं। अग्नि तो वस्तुतः एक ही है, परंतु जब वह अनेक प्रकारकी लकड़ियोंमें प्रकट होती है, तब वह अनेक-सी मालूम पड़ती है। वैसे ही सबके आत्मरूप भगवान् तो एक ही है, परंतु प्राणियोंकी अनेकतासे अनेक-जैसे जान पडते हैं।

मौन-साधना

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

प्राचीन समयमें हमारे आचार्य, ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा एकान्तमें मौन रहकर साधना करते थे तथा दीर्घकालतक चिन्तन करके हमें शाश्वत ज्ञानका दान करते थे, जो हमें वेदों, उपनिषदों, पुराणों, गीता, रामायण और नाना दर्शनोंके रूपमें उपलब्ध हुआ है। उस समय प्रकाशन और ग्रन्थोंके संग्रहकी सुविधा नहीं थी, फिर भी श्रुतियों, स्मृतियों, संहिताओंके रूपमें ज्ञानका अविरल प्रवाह बना रहा। गोस्वामी तुलसीदासजी, सूरदासजी, कबीरदासजी, मीराबाई प्रभृति अनेक सन्त, भक्त एवं सिद्ध महात्माओंने मौन-साधनाके द्वारा इस पुण्यधराको प्रकाशित किया है।

मौन-साधनासे तात्पर्य है—बहिर्जगत् और अन्तर्जगत्से मौन होना अर्थात् बाहरी जगत्के आवश्यक व्यवहारको यथासम्भव निष्ठापूर्वक निभाते हुए मन, बुद्धिसे परे आत्मजगत्में विचरण करना तथा कालातीत सत्यका अनुभव करना, जिसे सन्त कबीरने थोड़ेमें ही सटीक कह दिया है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥

आज ग्रन्थोंकी, विद्वानोंकी, ज्ञानकी, आविष्कारोंकी, प्रतिभाओंकी किसी भी क्षेत्रमें कमी नहीं है, फिर भी वैश्विक मानव अशान्त और दुखी है। भौतिक संसाधन प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हैं, पर मानव भयभीत, चिन्तित और आशंकित रहता है; एक-दूसरेसे डरा हुआ है तथा अवसाद, निराशा और नकारात्मकतामें जीवन व्यतीत कर रहा है। परस्पर प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, करुणा, दया, क्षमा, सहनशीलता, विश्वासका अभाव होता जा रहा है। तथा जीवनमें छल-कपट, दम्भाचरण, अहंकार, धन-मान-बड़ाई, व्यर्थ प्रदर्शन एवं आडम्बरका बोलबाला है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें भ्रष्टाचार, व्यभिचार, चरित्रहीनता और नैतिक मूल्योंका अभाव होता जा रहा है, जिससे हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन भी संकेत हैं। ऐसेमें मौन-साधनाका विशेष महत्त्व है, जिसके द्वारा हम अपने तथा समाज-जीवनको समुन्नत करते हुए आदर्श जीवन बिता सकते हैं, जो परितृप्तिसे भरा हुआ होकर मानव-मात्रके कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

मौन-साधनाके सहायक

(क) कर्मयोग—कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किये नहीं रह सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव एवं प्रकृतिके अधीन होकर कर्म करता रहता है, किंतु सभी कर्म हमें कर्मयोगकी ओर नहीं ले जाते हैं। जिन कर्मोंसे प्राणिमात्रका हित होता है, वे कर्म ही हमारे लिये शुभ होते हैं। भगवान्ने गीतामें कर्मोंका विस्तृत विवेचन किया है। भगवान्का कहना है कि कर्म करना तेरा अधिकार है, किंतु फल तुम्हारे हाथमें न होकर प्रकृति या परमात्माके अधीन है। (२। ४७) अतः तू फलाफलकी चिन्ता न करते हुए राग-द्वेषसे रहित समतामें स्थित होकर निष्काम कर्म कर (२। ४८—५०); सकाम कर्म और शास्त्र अथवा नीति-विरुद्ध कर्म न कर, इससे कि तू अशुभ अर्थात् संसार-बन्धनसे मुक्त हो जायगा, क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी गम्भीर है (४। १६-१७) अनुचित कर्म करेंगे, तो हमें शान्तिकी प्राप्ति नहीं हो पायेगी और हमारी मौन-साधना भी विचलित हो जायगी।

(ख) ज्ञानयोग—भगवान्ने जीवनसे निराश हुए अर्जुनको गीताके दूसरे अध्यायके आरम्भमें ही शरीर और आत्माको अलग-अलग बताते हुए कहा है कि शरीर तो नाशवान् है, अतः उसके साथ तादात्म्य नहीं करना चाहिये तथा आत्माको अविनाशी जानकर सत्कर्मोंको अवश्य ही करना चाहिये (२। १७-१८)। भगवान्ने स्थिर बुद्धिवाले व्यक्तिके लक्षण और आचरण बताते हुए कहा है कि जिस व्यक्तिने अपनी सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग कर दिया है तथा अपने-आपमें सन्तुष्ट है, वही

विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) आदिका बाहरसे तो त्याग कर देता है, किंतु भीतर-ही-भीतर मनमें उनका चिन्तन करता रहता है, तो उसका पतन होता है; क्योंकि विषयोंमें रस-बुद्धि रहनेसे कामना पैदा होती है, कामनामें बाधा पड़नेपर क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मूढ़ भाव होता है, मूढ़ भावसे स्मृति भ्रष्ट होती है, स्मृति भ्रष्ट होनेपर बुद्धि या विवेकका नाश हो जाता है और इस प्रकार मनुष्य अशुभ कर्म करके जीवनको अशान्त तथा दुखी कर लेता है (२।६२-६३)। अतः अपने विवेकका आदर करते हुए एवं अपने अविनाशी स्वरूपको पहचानते हुए ज्ञानसम्पन्न जीवन जीनेसे ही मौन-साधना सिद्ध हो सकती है।

(ग) आत्मसंयम-योग अथवा ध्यान-योग— गीताका छठा अध्याय कहता है कि मनुष्य स्वयं अपना उद्धार करनेका प्रयास करे और अपना पतन नहीं करे; क्योंकि यह आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जो निर्विकार है तथा समबुद्धिवाला है, वही अपना मित्र है, अन्यथा वह स्वयं ही अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारता है अर्थात् अवनतिके गर्तमें जाता है (६।५—९)। गीताका एक महत्त्वपूर्ण श्लोक ब्रह्मलीन स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजने 'चुप साधन' के सम्बन्धमें उद्धृत किया है—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥

'धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा संसारसे धीरे-धीरे उपराम हो जाय और मन (बुद्धि)-को परमात्मस्वरूपमें सम्यक् प्रकारसे स्थापन करके फिर कुछ भी चिन्तन न करे' (६।२५)। उन्होंने इसे अनेक स्थलोंपर 'चुपसाधन' में सहायक बताया है। 'साधक बाहर-भीतरसे चुप हो जाय अर्थात् कुछ भी चिन्तन न करे, न संसारका, न आत्माका, न परमात्माका। कारण कि साधक कुछ भी चिन्तन करेगा तो चित्त (जड़) साथमें रहेगा, चित्तसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होगा। यह किसीका भी चिन्तन करेगा तो किसीका ही चिन्तन होगा और किसीका भी परमात्मामें स्थिति होगी' (गीता-प्रबोधिनी पृ० १६२) यह श्लोक मौन-साधनाके लिये भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि मौन-साधनामें भी शान्त होकर रहना है और द्रष्टाभावसे, साक्षीभावसे चिन्तनके प्रति उदासीन रहते हुए सहज जीवन व्यतीत करना है, इससे स्वतः ही आत्मा-परमात्मामें स्थिति हो जायगी। द्रष्टाभावके सम्बन्धमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण दोहा है—

भोगत भोगत भोगते बंधन बँधते जायँ।
देखत देखत देखते बंधन खुलते जायँ॥

निर्लिप्त और अनासक्त होकर जब हम कर्तृत्वाभिमान, कर्मासक्ति और फलासक्तिका त्याग कर देते हैं, तो हमारी स्थिति जलमें कमलकी तरह हो जाती है, जो कीचड़में रहते हुए भी प्रसन्न मुद्रामें खिला रहता है। संसारमें रहते हुए भी हम संसारके भोगोंकी ओर आकृष्ट न होकर आत्मरस, परमात्मरसका पान करते हुए तुष्टि, पुष्टि और निवृत्तिकी स्थितिमें रहते हैं। परमात्माका सनातन एवं चेतन अंश यह जीवात्मा ही देहमें स्थित रहकर जड़ प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षित करता है, इन्हें अपना मानकर मोहित हो जाता है, कर्म-बन्धनमें पड़ जाता है और इस प्रकार अपने शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपसे विमुख होकर दुःख पाता है (गीता १५।७)।

(घ) भक्तियोग— सन्तोंने कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोगका लौकिक साधन बतलाते हुए भक्तियोगको स्वतन्त्र ओर अलौकिक साधन माना है; क्योंकि भक्ति-योगमें अपना उद्योग या प्रयास नहीं है, बल्कि भगवान्‌की शरणागतिमें जाकर उनसे अनन्य प्रेम करना है, शिशुकी तरह माँकी गोदमें निश्चिन्त होकर सोये रहना है—

चिंता दीनदयाल को मो मन सदा आनंद।
जायो सो प्रतिपालसी रामदास गोविंद॥

मौन-साधनासे विकारोंका सहज शमन— काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग-द्वेष, मान-बड़ाई, आलस्य आदि हमारे सहज विकार हैं, जो हमारे मन-बुद्धिको विचलित करते हैं तथा इनकी अतिशयता हमारी

उत्पन्न होनेवाले ये विकार हमें पापोंकी ओर धकेलते हैं और इनसे हमारा स्वभाव बिगड़ जाता है। साधकके लिये तो इनपर नियन्त्रण अति आवश्यक है। अन्यथा ये उसके पारमार्थिक मार्गके शत्रु बन जाते हैं। मौन-साधनासे इन विकारोंका सहज शमन हो जाता है। जैसे सन्त एकनाथपर मौलवीके द्वारा बार-बार थूके जानेपर भी वे अक्रोध रहे, धनुर्धारी अर्जुन एवं स्वामी विवेकानन्दके सामने क्रमशः उर्वशी एवं सुन्दर विदेशी युवतीका प्रस्ताव आनेपर भी वे निष्काम रहे, भक्त राँका-बाँका और सन्त रैदासके सामने क्रमशः अशर्फियाँ तथा पारस पत्थर आनेपर भी वे निर्लोभी रहे; अंगुलिमाल-जैसे हत्यारेके सामने भी गौतम बुद्ध निर्भीक रहे, भगवान् राम चौदह वर्षके वनवासकी बात सुनकर भी प्रसन्न ही रहे इत्यादि। सर्वथा विपरीत परिस्थितियाँ आनेपर भी समतामें स्थित साधक अनासक्त और सिद्धि-असिद्धिमें समान भाववाला रहता है। शत्रु-मित्रमें, मान-अपमानमें, सर्दी-गर्मी, निन्दा-स्तुति, सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें अनासक्त और सम रहनेवाला स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष भगवान्‌को प्रिय है (गीता १२।१८-१९)। सहज रहनेपर अवधूत दत्तात्रेयने अपनी दृष्टिके सामने ही चौबीस गुरुओंको पाया। कहनेका तात्पर्य है कि सहज रहनेपर हम स्वतः ही '**निर्ममो निरहङ्कारः**' की स्थितिमें आ जाते हैं। हमें इन विकारोंपर विजय नहीं करनी होती है, बल्कि ये स्वयं ही पराजित हो जाते हैं। भोगी और योगीमें यही अन्तर होता है कि भोगी इन्द्रियजन्य विकारोंके अधीन हो जाता है तथा योगी जितेन्द्रिय और संयमी होकर स्वाधीन रहता है।

मौन-साधना सहजावस्था—मौन-साधनाके लिये किसी क्रिया, अभ्यास, जप-तप और योग-साधनाकी आवश्यकता नहीं, बल्कि यह एक ऐसी अवस्था है, जो बिना प्रयासके ज्ञानसाध्य न होकर अनुभवगम्य है, शान्त रहकर इसे सहज ही अनुभव किया जा सकता है। यह साधककी अपने स्वाभाविक स्वरूपमें स्थित होनेकी ओर संकेत करती है, जहाँ *'संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥'* कहकर गोस्वामी तुलसीदासजी मौन हो गये हैं (रा०च०मा० १।५८।८) और कबीर साहब *'साधो सहज समाधि भली। गुरु प्रताप जा दिन तैं उपजी, दिन-दिन अधिक चली॥'* कहकर शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारकी साधारण क्रियाओंको प्रभुको समर्पित करके *'दुख सुख से कोइ परे परम पद'* में समा जाते हैं। जब जीव अपर प्रकृतिकी जड़तासे मौन होकर परा प्रकृतिकी चैतन्य-अवस्थामें स्थित हो जाता है, तो वह इस अवस्थाको निरन्तर अनुभव करने लगता है, किंतु मूक व्यक्तिके गुड़के स्वादकी तरह इसे पूर्णतः समझानेमें अपनेको असमर्थ पाता है। यही परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा कहा गया करणनिरपेक्ष साधन है—स्वयंको परमात्मामें लगाना, जिसे उन्होंने 'चुप साधन' कहकर वर्णित किया है; जिसे परम पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजने 'मूक सत्संग' कहकर प्रतिपादित किया है। श्रद्धेय सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने 'अचिन्त्यक ध्यान' कहकर महिमामण्डित किया है तथा अन्यान्य सन्तों, महात्माओं तथा भक्तोंने विभिन्न उपाधियाँ देकर परिभाषित किया है। यही '**उत्तमा सहजावस्था**' है, जहाँ पहुँचकर साधक '**न करोति न लिप्यते**' के भावसागरमें डूबकर परम आनन्दका अनुभव करता है। यही वह स्थिति है, जहाँ कर्मयोगी परम शान्तिका, ध्यानयोगी और ज्ञानयोगी चिन्मय स्वरूपका तथा भक्तियोगी परम विश्रामका अनुभव करते हुए क्रमशः शान्त, अखण्ड एवं अनन्त रसका अहर्निश पान करता है। इसे ही तत्त्वज्ञान, जीवन्मुक्ति, भगवद्दर्शन, '**वासुदेवः सर्वम्**' का बोध होना कहा गया है, जिसे प्राप्तकर जीवात्मा कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य और प्राप्तप्राप्तव्य हो जाता है। मौन-साधना सहज साधना है, जिसे किसी विशेष मुद्रामें दीर्घकालतक एकान्तमें बैठकर प्राप्त नहीं किया जाता है, वरन् चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, श्वास-प्रश्वासके साथ अपने-अपने दैनिक कार्योंको करते हुए जीवनमें सहज ही प्राप्त किया जा सकता है—

कबीर माला काठ की बहुत जतन का फेर।

लक्ष्मणजीका अलौकिक सेवाभाव

(श्रीविष्णुजी पटवारी)

रामायणमें रामसेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लक्ष्मणजीका सेवा-व्रत तपःपूर्ण था। उन्होंने सम्पूर्ण वनवास-कालमें अहर्निश श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की। जैसी सेवा श्रीलक्ष्मणजीने श्रीसीता-रामजीकी वनमें १४ वर्षतक की है, उसका कोई भी जोड़ नहीं है। उनके श्रीरामके प्रति प्रेम, भक्ति और सेवा-भाव कोई कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) श्रीहनुमान्‌जी सीता अन्वेषणके लिये लंकामें गये तो सीताजीका लक्ष्मणजीके प्रति कितना उच्च भाव है, यह निम्न श्लोकोंमें व्यक्त होता है—

स्रजश्च* सर्वरत्नानि प्रियायाश्च वराङ्गनाः॥
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम्।
पितरं मातरं चैव सम्मान्याभिप्रसाद्य च॥
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम्॥
अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन् वने।
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः॥
पितृवद् वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरत्।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः॥
वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्तो न बहुभाषिता।
राजपुत्रप्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे॥
मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः।
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान्॥
यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत्।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम॥
मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत्॥

(वा०रा० ५। ३८। ५४—६२)

अर्थात् विशाल भूमण्डलमें भी जिसका मिलना कठिन है, ऐसे उत्तम ऐश्वर्यका, भाँति-भाँतिके हारों, सब प्रकारके रत्नों तथा मनोहर सुन्दरी स्त्रियोंका भी परित्यागकर पिता-माताको सम्मानित एवं राजी करके जो श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें चले आये, जिनके कारण सुमित्रादेवी उत्तम सन्तानवाली कही जाती हैं, जिनका चित्त सदा धर्ममें लगा रहता है, जो सर्वोत्तम सुखको त्यागकर वनमें बड़े भाई श्रीरामकी रक्षा करते हुए सदा उनके अनुकूल चलते हैं, जिनके कन्धे सिंहके समान और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, जो देखनेमें प्रिय लगते और मनको वशमें रखते हैं, जिनका श्रीरामके प्रति पिताके समान और मेरे प्रति माताके समान भाव तथा बर्ताव रहता है, जिन वीर लक्ष्मणको उस समय मेरे हरे जानेकी बात नहीं मालूम हो सकी थी, जो बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें संलग्न रहनेवाले, शोभाशाली, शक्तिमान् तथा कम बोलनेवाले हैं, राजकुमार श्रीरामके प्रिय व्यक्तियोंमें जिनका सबसे ऊँचा स्थान है, जो मेरे श्वशुरके सदृश पराक्रमी हैं तथा श्रीरघुनाथजीका जिन छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति सदा मुझसे भी अधिक प्रेम रहता है, जो पराक्रमी वीर अपने ऊपर डाले हुए कार्यभारको बड़ी योग्यताके साथ वहन करते हैं तथा जिन्हें देखकर श्रीरघुनाथजी अपने मरे हुए पिताको भी भूल गये हैं (अर्थात् जो पिताके समान श्रीरामके पालनमें दत्त-चित्त रहते हैं), उन लक्ष्मणसे भी तुम मेरी ओरसे कुशल पूछना और वानरश्रेष्ठ! मेरे कथनानुसार उनसे ऐसी बातें कहना, जिन्हें सुनकर नित्य कोमल, पवित्र, दक्ष तथा श्रीरामके प्रिय बन्धु लक्ष्मण मेरा दुःख दूर करनेको तैयार हो जायँ।

उपर्युक्त प्रसंगको देखकर पता चलता है कि श्रीसीताजीने श्रीलक्ष्मणजीकी सेवाको कितने आदरसे हनुमान्‌जीको कहा है। प्रायः सभी भाव बहुत सरल भाषामें कहे हैं। श्लोक ५९ में जो कहा है कि '**सदृशः श्वशुरस्य मे**'—इसका भाव यह है कि राजमहलमें रहते

* संस्कृतमें '**स्रज्**' शब्द ही सभी प्रकारकी भोग और सुख-सुविधाकी सामग्रीका उपलक्षण है। श्रीलक्ष्मणजीने सब तरहकी सुख-

समय मेरी देखभाल जैसे मेरे श्वशुरजी करते थे, उसी प्रकार वनमें पूरी देखभाल, सेवा लक्ष्मणजीने की है। इसी कारणसे श्लोक ६० में उन्होंने यह भी कहा है कि '**मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः**' (अर्थात् श्रीरघुनाथजीका जिन छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति सदा मुझसे भी अधिक प्रेम रहता है); मेरेसे भी ज्यादा प्रिय यदि कोई श्रीरामको है, तो श्रीलक्ष्मणजी ही हैं—इस प्रकार लक्ष्मणजीके प्रति सीताजीके बहुत आदरपूर्ण और उच्च भाव हैं।

(२) पंचवटीमें लक्ष्मणजीने कुटीरका निर्माण किया। उसे देखकर लक्ष्मणजीको आलिंगन करके श्रीरामजीने कहा कि मेरे मनोभावको पूज्य पिताजी तत्काल समझते थे। जो काम मैं जैसे चाहता था, उसी प्रकार वे करते थे तथा मेरी धर्मनिष्ठाको भी वे खूब समझते थे। तुमने जो यह पर्णशाला बनायी है, सो सब मेरे भावोंके अनुसार निर्माण की है। यह हर प्रकारसे मेरे भावोंके अनुरूप है, अतः तुम्हारे जैसे पुत्रको पाकर मेरे धर्मात्मा पिताजी अब भी जीवित हैं—

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम॥

(वा०रा० ३। १५। २९)

अर्थात् लक्ष्मण! तुम मेरे मनोभावको तत्काल समझ लेनेवाले, कृतज्ञ और धर्मज्ञ हो। तुम-जैसे पुत्रके कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी मरे नहीं हैं—तुम्हारे रूपमें वे अब भी जीवित ही हैं। और भी लक्ष्मणको कहा है—

प्रीतोऽस्मि ते महत् कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः॥

(वा०रा० ३। १५। २८)

अर्थात् सामर्थ्यशाली लक्ष्मण! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने यह महान् कार्य किया है। उसके लिये और कोई समुचित पुरस्कार न होनेसे मैंने तुम्हें गाढ़ आलिंगन प्रदान किया है।

इस प्रकार श्रीरामने लक्ष्मणकी सेवाके लिये उत्कृष्ट

(३) वनवासमें प्रभु श्रीराम गौतमी गंगाके उत्तर तटपर देवलोकके समान सुरम्य स्थानमें दूसरे इन्द्रके समान सुखपूर्वक रहने लगे। राम-सेवामें जिनका चित्त लगा हुआ है, वे लक्ष्मणजी नित्यप्रति उन्हें कन्द-मूल फल लाकर देते और रात्रिके समय धनुष-बाण लेकर चारों ओर (घूमकर रक्षा करते हुए) जागा करते। वे तीनों ही नित्यप्रति गौतमीमें स्नान किया करते थे। उस समय सीताजी उन दोनोंके बीचमें रहकर आया-जाया करती थीं।

अध्युवास सुखं रामो देवलोक इवापरः।
कन्दमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनं तयोः॥
आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानसः।
धनुर्बाणधरो नित्यं रात्रौ जागर्ति सर्वतः॥
स्नानं कुर्वन्त्यनुदिनं त्रयस्ते गौतमीजले।
उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमागमौ॥

(अध्या० रामा० ३। ४। १२—१४)

(४) लक्ष्मणजी रात्रि-जागरण करके पहरा देते थे और दिनमें सेवामें लगे रहते थे। इस प्रकार चौदह वर्षतक बिना निद्रा और आहारके श्रीलक्ष्मणजी ही रह सकते थे; क्योंकि ये शेषावतार थे। सर्पजातिका आहार एवं निद्राका काम हवासे ही चल जाता है। मेघनादको ब्रह्माका वर था कि जो बारह वर्षतक निद्रा और आहार न ले, उसीके द्वारा उसकी मृत्यु होगी; सो शेषावतार होनेके कारण एकमात्र श्रीलक्ष्मणजीके द्वारा ही मेघनादकी मृत्यु हुई, वह भी तीन दिन-रात लगातार युद्ध करके लक्ष्मणजीने उसका वध किया। मृत्युके समय उसने राम और लक्ष्मणका नाम लेकर प्राण छोड़े, इसलिये भगवान्‌के धाममें गया। इस विषयमें विभीषणने श्रीरामसे कहा—

यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः॥
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः।
लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्त्वया सह॥
तदादि निद्राहारादीन् न जानाति रघूत्तम।

तदाज्ञापय देवेश लक्ष्मणं त्वरया मया।
हनिष्यति न सन्देहः शेषः साक्षाद्धराधरः॥

(अध्या० रामा० ६।८।६४—६७)

अर्थात् विभीषणने कहा—यह राक्षस किसी औरसे नहीं मारा जा सकता। जिसने बारह वर्षतक निद्रा और आहारको छोड़ दिया हो, ब्रह्माजीने इस दुरात्माकी मृत्यु उसीके हाथसे निश्चित की है। हे रघुनाथजी! ये लक्ष्मणजी जबसे अयोध्यासे निकलकर आपके साथ आये हैं, तभीसे आपकी सेवामें लगे रहनेके कारण ये निद्रा और आहारादि तो जानते ही नहीं। हे राजेन्द्र! ये सब बातें मैं जानता हूँ। अतः हे देवेश्वर! आप शीघ्र ही लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये। ये साक्षात् धराधारी शेषनाग हैं, इसमें सन्देह नहीं, उस राक्षसको ये अवश्य मार डालेंगे।

इसपर श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको मेघनादका वध करनेके लिये भेजा। श्रीरामजीने विभीषणसे कहा—

स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबलः।
जानामि लक्ष्मणस्यापि स्वरूपं मम सेवनम्॥
ज्ञात्वैवासमहं तूष्णीं भविष्यत्कार्यगौरवात्।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः॥

(अध्या०रामा० ६।९।२-३)

अर्थात् वह (मेघनाद) ब्रह्मास्त्र-विद्याका जाननेवाला, बड़ा शूरवीर, मायावी और महाबली है तथा लक्ष्मण मेरी जैसी सेवा करते हैं, मैं उसका स्वरूप भी जानता हूँ (अर्थात् मुझे यह पता है कि मेरी सेवाके कारण उन्होंने निद्रा और आहार आदिको छोड़ रखा है); किंतु इस आगामी कार्यकी कठिनताका विचार करके ही मैंने यह सब जान-बूझकर भी अभीतक कुछ नहीं कहा।

लक्ष्मणजी हनुमान् आदि मुख्य वीरोंको लेकर मेघनादका वध करने चले। उन्होंने तीन दिन और तीन रात्रितक लगातार युद्ध करके उसे मारा। वहाँ एक श्लोक मन्त्रवत् है, जो कि वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्म

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम्॥

(अध्या० रामा० ६।९।४५)

अर्थात् यदि दशरथनन्दन भगवान् राम परम धार्मिक, सत्यकी मर्यादा रखनेवाले और त्रिलोकीमें प्रतिद्वन्द्वीसे रहित हैं, तो हे बाण! तू इस मेघनादको मार डाल।

इस प्रकार मेघनादके वधमें एकमात्र लक्ष्मणजी ही समर्थ थे।

(५) श्रीरामचरितमानसमें वर्णन आता है कि श्रीरामजीको वनगमनका आदेश हुआ है, ऐसा लक्ष्मणजीने सुना तो वे व्याकुल हो गये। उन्होंने अधीर होकर श्रीरामजीके चरण पकड़कर कहा कि मैं भी आपके साथ आपकी सेवाके लिये चलूँगा, तो श्रीरामजीने कहा।

भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं।
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू।
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी।

(रा०च०मा० २।७१।२—७)

अर्थात् भरत और शत्रुघ्न घरपर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मनमें मेरा दुःख है। इस अवस्थामें मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ, तो अयोध्या सभी प्रकारसे अनाथ हो जायगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभीपर दुःखका दुःसह भार आ पड़ेगा। अतः तुम यहीं रहो और सबका सन्तोष करते रहो नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्यमें प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरकका अधिकारी होता है। हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। ऐसा कहकर श्रीरामजीने तो लक्ष्मणको वनमें साथ ले जानेकी मनाही की है, किंतु यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥

(रा०च०मा० २।७१)

अर्थात् प्रेमवश लक्ष्मणजीसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये और कहा—हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं; अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

(रा०च०मा० २।७२।४—८)

हे नाथ! मैं स्वभावसे ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसीको भी नहीं जानता। जगत्‌में जहाँतक स्नेहका सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेदने गाया है—हे स्वामी! हे दीनबन्धु! हे सबके हृदयके अन्दरकी जाननेवाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं। धर्म और नीतिका उपदेश तो उसको करना चाहिये, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्‌गति प्यारी हो, किंतु जो मन, वचन और कर्मसे चरणोंमें ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागनेके योग्य हैं? इसपर श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको साथ चलनेके लिये स्वीकृति देकर कहा—

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥
पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥

(रा०च०मा० २।७३।१—५)

अर्थात् हे भाई! जाकर मातासे विदा माँग आओ और जल्दी वनको चलो! रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामजीकी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनन्दित हो गये। बड़ी हानि सुमित्राजीके पास आये, मानो अन्धा फिरसे नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माताके चरणोंमें मस्तक नवाया। किंतु उनका मन रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामजी और जानकीजीके साथ था। माताने उदास-मन देखकर उनसे [कारण] पूछा। लक्ष्मणजीने सब कथा विस्तारसे कह सुनायी।

इसपर सुमित्रामाताने कहा—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।

(रा०च०मा० २।७४।२—८)

अर्थात् सुमित्राजी कोमल वाणीसे बोलीं—हे तात! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं! जहाँ श्रीरामजीका निवास हो, वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्यका प्रकाश हो, वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वनको जाते हैं, तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी—इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये। फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं, हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्वार्थरहित सखा हैं। जगत्‌में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही [पूजनीय और परम प्रिय] माननेयोग्य हैं। हृदयमें ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत्‌में जीनेका लाभ उठाओ!

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

(रा०च०मा० २।७४)

अर्थात् मैं बलिहारी जाती हूँ। [हे पुत्र!] मेरे समेत

होकरश्रीरामजीके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

(रा०च०मा० २।७५।३—८)

अर्थात् तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामजी वनको जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो। राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह इनके वशमें स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंका त्यागकर मन, वचन और कर्मसे श्रीसीतारामजीकी सेवा करना। तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और सीताजीरूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है।

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।

(रा०च०मा० २।७५ छन्द)

अर्थात् हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात् तुम वही करना), जिससे वनमें तुम्हारे कारण श्रीरामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सुखोंकी याद भूल जायँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी)-को शिक्षा देकर [वन जानेकी] आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो!

इसके अलावा यह भी कहा कि इतने अच्छे ढंगसे सेवा करना कि यहाँके किसी भी प्रकारकी सुख-सुविधाकी उन्हें याद ही नहीं आवे। बहुत अच्छे ढंगसे उनके प्रति आदर-सम्मानके साथ सेवा करना। इस तरह श्रीलक्ष्मणजीका चरित्र बेजोड़ है, वे अद्वितीय हैं।

सरस्वती-वन्दना

(श्रीबालकृष्णजी गर्ग)

ज्ञान दे, अज्ञान का तू तिमिर हर ले, माँ सरस्वति!
मुग्ध हो जाये चराचर, मधुर स्वर दे, माँ सरस्वति!
सत्य-शिव-सुंदर सृजन का हमें वर दे, माँ सरस्वति!
भूल हो जाये कदाचित्, क्षमा कर दे, माँ सरस्वति!

हित-सहित साहित्य हो, संगीत की ऐसी कला, माँ!
अर्थ जीवन को मिले, पा जायँ सब अपना भला माँ!
भव्य भावों से भरा मन, तन-बदन में नवल स्पंदन।
बुद्धि ऐसी कर प्रकाशित, बने जिससे दिव्य जीवन।

चन्द्रवदना, शुभ्रवसना, श्वेतपद्मासना, माता!
सर्व-विद्या-कला-दात्री, भक्त तेरे गीत गाता।
हंसवाहिनि, वाद्य वीणा-वादिनी, हे माँ सरस्वति!
मूढ़ता जड़ता-प्रमाद-विनाशिनी, हे माँ सरस्वति!

शाक्त दर्शन एवं शक्ति-उपासना

(प्रो० श्रीरामराजजी उपाध्याय)

भारतीय दर्शनोंमें तीन प्रकारकी जिज्ञासाएँ देखनेको मिलती हैं। पहली जिज्ञासा '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' है, जिसका वर्णन भगवान् बादरायणने वेदान्तसूत्रमें किया है। दूसरी जिज्ञासा '**अथातो धर्मजिज्ञासा**' है, जिसका वर्णन महर्षि जैमिनिने मीमांसासूत्रमें किया है। तीसरी जिज्ञासा '**अथातः शक्तिजिज्ञासा**' है, जिसका वर्णन ऋषि हयग्रीव एवं ऋषि अगस्त्यने शक्तिसूत्रमें किया है। इन तीनों सूत्रोंका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि भगवान् बादरायणके जिज्ञासाका केन्द्र-बिन्दु ब्रह्म है। महर्षि जैमिनिके जिज्ञासाका केन्द्र धर्म है और ऋषि अगस्त्यके जिज्ञासाका केन्द्र आदिशक्ति जगज्जननी हैं। प्रथम दोकी जिज्ञासाओंमें एकके ध्यान तथा उपासनाका आधार निर्गुण-निराकार निरंजन परात्पर सत्ता है तथा दूसरेके ध्यान एवं उपासनाका आधार कर्म है। व्यासजीका वेदान्त-दर्शन निर्गुण-निराकार परमात्माके सत्ताके स्वरूपकी मीमांसा करता है,वहीं जैमिनिका मीमांसा-दर्शन स्वर्गके साधनभूत यज्ञ एवं यागादि कर्मकी मीमांसामें रत है। एककी दृष्टिमें विश्वके सृजन, पालन एवं संहारके लिये किसी परम सत्तामें विश्वास अनिवार्य है,दूसरेके लिये इसकी आवश्यकता नहीं है। इसके अनन्तर अद्वैत महाशक्तिका अनुसन्धान किया गया, जिसके परिणामस्वरूप '**अथातः शक्तिजिज्ञासा**' का सूत्र दृष्टिगोचर हुआ। इसको बह्वृचोपनिषद्में काम-कला, शृंगार-कला, महात्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, श्रीविद्या, बाला, अम्बिका, सावित्री, सरस्वती आदि-आदि नामोंसे कहा गया है। इसीको त्रिपुरातापिन्युपनिषद्में भगवती त्रिपुरा, परमा विद्या, चन्द्रकला, महाकुण्डलिनी आदि कहा गया है।

शाक्तदर्शन एवं शक्त्युपासनाका आर्ष सूत्र है—'**अथातः शक्तिजिज्ञासा**' श्रीदेव्यथर्वशीर्षमें सारे देवता पूछते हैं—देवी तुम कौन हो? **काऽसि त्वं महादेवीति।** महादेवी कहती हैं—'**अहं ब्रह्मस्वरूपिणी, मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्, शून्यं चाशून्यं च, वेदितव्ये, अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि**...' तब देवताओंने कहा—'**एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशांकुश-धनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या।**' इस प्रकार '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**'की तरह '**अथातः शक्तिजिज्ञासा**' हयग्रीवके दर्शन एवं अगस्त्य ऋषिके शक्तिसूत्रमें प्राप्त होता है

स्पष्ट है कि वही शक्ति जिज्ञास्य है, जो मन्त्रोंमे मातृका, शब्दोंमें ज्ञान, ज्ञानमें चिन्मयातीता एवं शून्योंमे शून्यसाक्षिणी है—

मन्त्राणां मातृकादेवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी॥

पूर्ण समर्पणभाव व्यक्त करते हुए श्रीशंकराचार्यजी देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रमें लिखते हैं—

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥

शाक्तोपासनामें अनेक सम्प्रदाय हैं, जिनका नामकरण उपास्यके स्वरूपके आधारपर हुआ है। शाक्त-सम्प्रदाय एक तान्त्रिक सम्प्रदाय है। तन्त्रोंको क्रान्तकी दृष्टिसे तीन भागोंमें विभाजित किया गया है, जिन्हें विष्णुक्रान्त, रथक्रान्त और अश्वक्रान्तके रूपमें जाना जाता है प्रत्येक विभागमें ६४ तन्त्र सम्मिलित हैं। सम्मोहन-तन्त्रके पाँचवें अध्यायके अनुसार शाक्तोंके नौ आम्नाय एवं चार सम्प्रदाय हैं, जो केरल, काश्मीर, गौण एवं विलासके रूपमें जाने जाते हैं। आन्तरिक एवं बाह्य उपासनाके आधारपर इनके दो-दो भेद बतलाये गये हैं आचार-विचारकी दृष्टिसे शाक्तोंको कौल, समयी एवं मिश्र—इन तीन वर्गोंमें बाँटा गया है। श्रीशाखाके कौलशाखाके अनुयायी आचार्य अभिनवगुप्तपादजी हैं समय-मार्गके अनुयायी आचार्य श्रीलक्ष्मीधरजी हैं शंकराचार्यजी कौल एवं समयी दोनों मार्गोंका अनुसरण करते हुए दिखते हैं।

अयं तु परमः कौलमार्गः सम्यङ्महेश्वरि।
असिधाराव्रतसमो मनोनिग्रहहेतुकः॥

शाक्तमतमें कौल-सम्प्रदाय एवं कौलाचारका विशेष महत्त्व है। आचारोंमें कौलाचार अवधूत मार्गमें भी माना जाता है। शाक्तमतके चार आचार इस प्रकार हैं—वैदिकाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार एवं शाक्ताचार। शाक्ताचारके वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार एवं कौलाचार ये चार रूप बतलाये गये हैं।

षट्साम्भवरहस्य नामक ग्रन्थमें दक्षिणाचारसे श्रेष्ठ गाणपत्य आचार, गाणपत्य आचारसे श्रेष्ठ सौर आचार, सौर आचारसे श्रेष्ठ शैवाचार, शैवाचारसे श्रेष्ठ शाक्ताचार है। शाक्ताचारोंमें भी क्रमशः दक्षिणाचार, उससे श्रेष्ठ वामाचार और उससे श्रेष्ठ कौलाचार है। तान्त्रिक समाम्नायमें कौल या अवधूत मतको श्रेष्ठ बतलाया गया है। नाथोंने इसे अपना मत माना है—'**अस्माकं मतं त्ववधूतमेव।**' कौलज्ञाननिर्णयके इक्कीसवें पटलमें अनेक कौल-मतोंका उल्लेख किया गया है। कौलज्ञाननिर्णयके प्रणेता मत्स्येन्द्रनाथजीने योगिनी कौलमार्गका प्रवर्तन किया था। मत्स्येन्द्रनाथद्वारा प्रवर्तित कौल-ज्ञान कामरूपकी योगिनियोंमें घर-घरमें विद्यमान था। आचार्य शंकरने कौलमतको दो रूपोंमें बतलाया है, जिसे पूर्व कौल एवं उत्तर कौल कहा जाता है। पूर्व कौलमें मूलाधारनिष्ठ, स्वाधिष्ठाननिष्ठ एवं उभयनिष्ठ—ये तीन भेद हैं। उत्तर कौलमें मातंगी, वाराही, कौलामुखी तथा तन्त्रनिष्ठाको बतलाया है।

पूर्व कौलके मतमें त्रिकोण ही बिन्दुस्थान है और वहीं बिन्दु वहाँ पूजित होता है। '**अत्र कौलमते त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम्। स एव बिन्दुः तन्त्राश्रयः।**' कौल अधोमुखी त्रिकोणकी पूजा करते हैं। उत्तर कौल प्रत्यक्ष पूजक होता है। श्रीचक्रकी नवयोनियोंमें-से मध्यवर्ती ही प्रथम त्रिकोण है। समस्त कौल मूलाधार-स्थित कुण्डलिनी शक्तिको अपने कुलकी प्रधान उपास्या मानते हैं, जिसे कौलिनी कहते हैं। आनन्दभैरवीको शक्ति माना गया है। सृष्टिक्रममें आनन्दभैरवी प्रधान एवं प्रधान एवं आनन्दभैरवी गौण होती है। भगवती ललिताकी उपासनामें उक्त दोनों मत स्वीकार किये गये हैं। ललित मन्त्रके दस भेद ब्रह्माण्डपुराणमें मिलते हैं—

तेभ्योऽपि ललितामन्त्राः दशभेदविभेदिताः।
एतेषु द्वौ मनुराजौ तु वरिष्ठौ विन्ध्यमर्दनः॥
लोपामुद्रा कामराज इति ख्यातिमुपागतौ।
हादिस्तु लोपामुद्रा स्यात् कामराजस्तु कादिका॥

लोपामुद्राको हादिविद्या और कामराजोपासिता विद्याको कादिविद्या कहा गया है। पुण्यानन्दनाथ और अमृतानन्दनाथ हादिविद्याके अनुयायी हैं।

आचार्य अभिनवगुप्तपादने तन्त्रलोकमें मत्स्येन्द्रनाथको सकलकुलशास्त्रावतारकः कहा है। कौलदर्शनके सम्प्रदायोंमें नाथ नामान्त अनेक आचार्य हुए हैं। कौल-सम्प्रदायसे ही सौभाग्य विद्या सम्प्रदायका प्रवर्तन हुआ है। इसमें अनेक आनन्दनाथ नामान्त आचार्य हुए, जिन्हें गुरु कहा गया है। भावनोपनिषद्में प्रथम सूत्र गुरुके बारेमें देते हुए—'**श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः**' कहा गया है तन्त्रराज तन्त्रगुरुको ही आद्या शक्ति मानता है।

गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते॥

शिवसूत्रमें कहा गया है—

गुरुरेव पराशक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका।
अवकाशप्रदानेन सैव यायादुपायताम्॥

अर्थात् गुरुतत्त्वको नवरन्ध्रोंमें व्याप्त माना गया है गुरुतत्त्वको कुण्डलिनी शक्तिके रूपमें भी बतलाया गया है। शाक्त-साधनामें मेरुदण्ड कुण्डलिनीके जागरणके बिना आत्मसिद्धिको सम्भव नहीं माना गया है। कुण्डलिनी शक्तिको तीन अवस्थाओंमें बतलाया गया है—'**कुण्डलिनी शक्तेरवस्थात्रयं विद्यते।**'

१-कुमारी कुण्डलिनी—यह वह अवस्था है, जिसमें कुण्डलिनी कुमारावस्थामें रहती है और सोकर उठनेपर सर्वप्रथम मन्द स्वरमें ध्वनि करती है। यह ध्वनि सर्प होनेके कारण सोकर उठनेपर करती है।

२-योषित् कुण्डलिनी—यह वह कुण्डलिनी होती

३-पतिव्रता कुण्डलिनी—यह वह कुण्डलिनी है, जो अपने पति सदाशिवके साथ सहस्रदलकमलमें विहार करती है।

कुण्डलिनी शक्तिको वर्ण-शरीरात्मिका कहा गया है। वर्ण और नाद ही इसका शरीर है। श्रीविद्या-साधनामें महात्रिपुरसुन्दरीको कुण्डलिनीका स्वरूप बतलाते हुए पाँच भेद बतलाये गये हैं।

१-परा कुण्डलिनी—इसमें नादसे ही सम्पूर्ण विश्वका सृजन होता है। नाद ही प्राण एवं जीवनी शक्ति है। यहीं अनन्त विश्वको गर्भमें धारण करके प्रसुप्त सर्पाकारमें रहती है। विश्वको गर्भमें धारण करके स्थित नादकी शक्तिको परा कुण्डलिनी शक्तिके रूपमें जाना जाता है।

२-वर्ण कुण्डलिनी—इसमें परा कुण्डलिनीके उस नादमें जब स्फुरण होता है, तब वह वर्ण कुण्डलिनी बन जाता है।

३-प्राण कुण्डलिनी—जब नादरूप गम्भीर सुषुप्तिमें लीन हो जाता है, तब वह प्राण कुण्डलिनी कहा जाता है। यह प्राण ही हंस है। हकार विमर्शनरूपसे त्याग करता है और सकार समादान यानी ग्रहण करता है। त्याग एवं ग्रहण ही इस कुण्डलिनीका स्वभाव है।

४-ऊर्ध्व कुण्डलिनी—ब्रह्मरन्ध्रमें ऊर्ध्व कुण्डलिनी स्थित रहती है। इसका स्वरूप शास्त्रोंमें प्रसुप्त भुजंगीके समान है, जो सकल भुवनोंका आधार है। ऊर्ध्व कुण्डलिनी शक्ति अपने स्वरूपात्मक भित्तिपर समग्र विश्वका स्फुरण करती है। इसी कुण्डलिनी शक्तिसे शक्तितत्त्वका आरम्भ होता है। समग्र भुवनों एवं तत्त्वोंका मुख्य आधार यही कुण्डलिनी शक्ति है।

५-शक्ति कुण्डलिनी—शक्तिका संचार मायाके ऊपर होता है। उसके नीचे कुण्डलिनी शक्तिका स्थान होता है। माया शक्ति ही नाद,विन्दु एवं अनन्त विश्वके आकारमें स्फुरित होती है। शक्ति कुण्डलिनीके गर्भमें समग्र विश्व अवस्थित रहता है।

इस सन्दर्भमें गुरु गोरक्षनाथकी दृष्टि यह है कि यद्यपि कुण्डलिनी स्वरूपत: एक ही है, तथापि स्थान एवं स्थूल सूक्ष्म भेदसे इसके तीन भेद किये गये हैं, जिन्हें अध: कुण्डलिनी, मध्यशक्ति कुण्डलिनी और ऊर्ध्व शक्ति कहते हैं। अध: शक्ति कुण्डलिनी मूलाधार चक्रमें स्थित रहती है। मध्य शक्ति कुण्डलिनी मणिपूर चक्रमें स्थित होती है। ऊर्ध्व शक्ति कुण्डलिनी सहस्रदल चक्रमें स्थित रहती है।

इन समस्त कुण्डलिनियोंकी शक्ति, उपासनामें ही निहित होती है, जिसे शक्ति-उपासना कहा जाता है।

भगवान् शिव सबका मंगल करें

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम्॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुस्कानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिव-नामक कोई अनिर्वचनीय तेज:पुंज सबका मंगल करे।

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो यस्याहु: करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनस्तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे॥

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे ही विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) जिनके कृपाकटाक्षके ही वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर अद्वितीय आत्मज्ञानानन्दस्वरूपमें ही देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है।

अलबेला भक्त—केवट

(श्रीदयानन्दजी यादव)

भक्तका भगवान्‌में अटूट विश्वास होता है, इसीलिये भक्त भगवान्‌के विधानको सर्वोपरि मानता है और भगवान्‌के चरणोंमें अपना समर्पणकर भगवद्भक्तिमें लीन रहता है। लेकिन भक्त भी चार प्रकारके होते हैं, इसका उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीतामें आया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(७।१६)

इन चारोंमें आर्त भक्त भगवान्‌से अपने संकट और कष्टका निवारण चाहता है तथा अर्थार्थी सांसारिक पदार्थों और धनकी याचना करता है, जबकि जिज्ञासु भक्त भगवान्‌का यथार्थरूप जानकर अपनी जिज्ञासा शान्त करना चाहता है, लेकिन ज्ञानीको भगवान्‌ने अपना साक्षात् स्वरूप मानकर उसे प्रेमीकी संज्ञा दी है—

'प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थम्।'

प्रेमी भक्त ही वास्तविक शरणागतिको प्राप्त होता है, इसीलिये भगवान्‌ने उसे ज्ञानी कहा है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसमें ऐसे ही एक प्रेमी भक्त (केवट)-का प्रसंग वर्णित किया है, जो भगवान्‌से कुछ नहीं माँगता, जबकि आर्त, अर्थार्थी तथा जिज्ञासु सभी भगवान्‌से कुछ-न-कुछ माँगते हैं, अर्थात् कुछ चाहते हैं, जबकि प्रेमी भक्त भगवान्‌की सेवा करना चाहता है। मानसका यह प्रेमी भक्त एक अलबेला भक्त भी है, क्योंकि भगवान् ही भक्तसे कुछ माँग रहे हैं। गंगातटपर खड़े होकर भगवान् श्रीरामने केवटको आवाज लगायी—अरे! केवट भैया! नौका लाना—बड़ा ही अद्भुत दृश्य है कि जिन चरणोंसे श्रीगंगाजीका उद्भव—उद्गम हुआ, उसीको पार करनेके लिये श्रीहरि स्वयं नाव माँग रहे हैं—

तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ मागत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥

(कवितावली २।५)

केवटने नाव लानेसे ना कर दिया और कहने लगा—

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।

(रा०च०मा० २।१००।३)

भगवन्! मैं आपके मर्मको जानता हूँ, आपके चरणरजमें ऐसी कोई जड़ी है, जो अपने स्पर्शसे मनुष्य बना देती है। प्रभो! मैंने सुना है कि गौतममुनिकी पत्नी, जो शिलारूप थी, आपके चरण छूते ही सुन्दर स्त्री हो गयी। हे नाथ! मेरी यह नाव तो काठकी है और पानीमे रहते-रहते यह काठ और भी नरम हो गया है। मेरी यह नाव यदि स्त्री बन गयी, तो न तो मैं आपको पार उतार पाऊँगा और न ही अपनी पत्नीको समझा पाऊँगा। इससे मेरे परिवारमें कलह उत्पन्न हो जायगा, अतः आपके पैर धुलवाकर ही मैं आपको नावमें बैठाऊँगा। यदि आप पैर नहीं धुलवाना चाहते हों, तो यहाँसे थोड़ी ही दूरीपर कमरतक जल है, उसकी मैं आपको थाह दिखला देता हूँ, वहाँसे पैदल ही पार हो जाइये—

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू।
परसें पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।

(कवितावली २।६)

हे प्रभो! इसमें आपके चरणोंका कोई दोष नहीं है, यह तो आपकी चरण-धूलिका प्रभाव है—

रावरे दोषु न पायन को पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है

(कवितावली २।४)

हे नाथ! मैं इस नावके अलावा और कोई जीविकोपार्जनका साधन भी नहीं जानता, इसीके सहारे अपने परिवारका पालन-पोषण करता हूँ। हे स्वामी! मैं अत्यन्त निर्धन और गरीब हूँ, अतः दूसरी नाव भी नहीं खरीद सकता, इसीलिये आपके चरण धोकर ही आपको नावमें बैठानेके लिये अड़ा हुआ हूँ, उतराई (मजदूरी)-की कोई बात नहीं है—

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥

मुझे महाराज दशरथकी सौगन्ध है, मैं चरण धोकर आपको नावपर बैठाकर पार कर दूँगा। ऐसा सुनकर श्रीलक्ष्मणजीकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं और उन्हें क्रोध आया कि ये केवट हमारे पिताश्रीतक पहुँच रहा है। इसपर केवटने श्रीलक्ष्मणजीकी तरफ देखकर कहा—हे नाथ! पिछले जन्ममें जब मैं कच्छप था और आप शेषनागरूपमें विराजमान थे, तब मैंने क्षीरसागरमें प्रभुके चरण-स्पर्श करनेकी बार-बार कोशिश की, लेकिन आपने मुझे अपनी फुंकारसे दूर हटा दिया और चरण-स्पर्शसे वंचित कर दिया। हे वीरवर! अब भले ही आप मुझे तीर मारें, लेकिन जबतक मैं पैर पखार नहीं लूँगा, तबतक पार नहीं उतारूँगा।

बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

(रा०च०मा० २। १०० छन्द)

हे विभो! जिस चरण-रजका स्पर्शकर अहल्या तर गयी, उन्हीं चरणोंको पाकर और बिना धोये नावपर चढ़ाकर मैं अपनी मजदूरी नहीं खोऊँगा और न ही अपनी हँसी कराऊँगा।

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥

केवटके इस प्रकार प्रेममें लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर भगवान् श्रीराम मुसकराकर कहते हैं—

बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

भगवान्‌के वचन सुनकर केवटने अपनी पत्नी और पुत्रको बुलाया, पूरा परिवार भगवान्‌को घेरकर बैठ गया, केवट शीघ्र ही कठौतेमें जल भरकर लाया और बड़े भावसे प्रसन्न होकर पाद-प्रक्षालन करने लगा। भगवान्‌के एक पैरको कठौतेमें रखकर धोने लगा, तो भगवान् श्रीरामको एक पैर जमीनपर रखकर खड़ा होना पड़ा। तब श्रीरामने कहा, 'केवट! जल्दी करो, एक पैरपर कैसे खड़ा रहूँ? अन्य कोई सहारा भी नहीं है।' तब केवट बड़ी चतुराईसे भोले अन्दाजमें कहता है—'हे प्रभो! आपको यदि सहारा चाहिये, तो अपना एक हाथ मेरे सिरपर हाथ केवटके सिरपर रख दिया। देवता इस दृश्यको देखकर पुष्प-वर्षा करने तथा केवटके भाग्यकी सराहना करने लगे। इस चरण-प्रक्षालनके दृश्यको देखकर श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं—केवट! तुम भावके कारण पाँव धो रहे हो, तब केवटने अपने अल्हड़ अन्दाजमें कहा—वीरवर! भावके कारण नहीं, मैं तो नावके कारण पाँव धो रहा हूँ, केवटका कैसा अलबेला अन्दाज है—

चरण धोकर केवटने चरणोदकका परिवारसहित पान किया। फिर अपने पितरोंके उद्धारकी प्रार्थना की हे प्रभो! श्रीगंगाजीका अवतरण आपके चरणोंसे ब्रह्माजीके कमण्डलुमें और वहाँसे श्रीशंकरभगवान्‌की जटामें हुआ इसके बाद गंगामैया भगीरथकी तपस्यासे प्रकट हुईं और भागीरथके पूर्वजोंका उद्धार हुआ। आज गंगाजीका प्राकट्य मेरे पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये मेरे कठौतेमें हुआ है। इस प्रकार केवटने अपने पूर्वजोंका उद्धार कराया। अब श्रीराम, लक्ष्मणजी तथा जगज्जननी श्रीसीताजीको नावपर चढ़ाकर गंगाके पार ले गया।

गंगा पार जानेपर श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी सभी गंगाजीकी रेतीमें खड़े हो गये, तब केवटने नावसे उतरकर भगवान् श्रीरामके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया, तब लक्ष्मणजी बोले—'केवट! उधर तो तुम अकड़ रहे थे और अब पैर पकड़ रहे हो।' केवट बोला—हे शेषावतार! यह तो घाट-घाटका अन्तर है, क्योंकि अब आपका कार्य पूरा हो गया तो अब अकड़नेसे क्या लाभ? अब तो पैर पकड़नेमें ही कल्याण है। केवटको इस समय अनुपम कृपानुभूति हुई।

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।

नावसे उतरनेके बाद श्रीरामने सोचा कि हमने केवटको उतराईमें कुछ दिया नहीं, तो प्रभुको संकोच हुआ। इस संकोचको श्रीसीताजीने महसूस किया और अपनी रत्नजटित अँगूठी उतारकर श्रीरामकी ओर बढ़ा दी और कहा—हे करुणानिधान! अँगूठी आपके उस हाथमें नहीं तो आपके इस हाथमें तो है, क्योंकि जबसे मेरा हाथ मेरे पिताश्रीने आपके हाथमें दिया, उसी दिनसे

पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने अँगूठी लेकर केवटसे कहा—'केवट भैया! अपनी नावकी उतराई लो', तब केवटने चरण पकड़ लिये और बोला—हे नाथ! अब मुझे कुछ नहीं चाहिये; क्योंकि जब चाहना थी तो मिला नहीं और अब मिल रहा है, तो इच्छा नहीं। प्रभो! अब तो मेरा विचार ही बदल गया, आपने आते ही मुझसे नाव माँगी थी, तो मैंने सोचा जो मेरेसे ही माँग रहा है, उससे क्या लेना? हे नाथ! आपने मुझसे माँगकर मुझे बड़ा बना दिया, अब बड़ा ही रहने दो। कुछ देकर मुझे अब छोटा न बनाओ, अब तो बस! आपकी कृपा बरसती रहे। अपने चरण हमारी नैयामें रख देनेसे आपने हमारी नैया पार लगा दी, हे राघव! आपके चरण-स्पर्शसे नैया तो हमारी ही पार लगी है।'

'हे कौसलेन्द्र! वैसे भी मैं आपका जाति भाई हूँ, तो आपसे क्या लेना? क्योंकि मेरा भी काम पार करना है और आपका भी काम पार लगाना है—

मैं गंगा तट का केवट हूँ, तुम भव सागर के माँझी हो॥

इस तर्कके साथ केवटने नावकी उतराई लेनेसे इनकार कर दिया तथा कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥

'हे अखिलेश्वर! आज मैंने क्या नहीं पाया? आज मेरे दोष, दु:ख और दरिद्रताकी आगका शमन हो गया; क्योंकि पितरोंके उद्धारसे मेरे दोष मिट गये तथा आपने मुझसे मेरी अटपटी बातें सुनीं और आप मुसकराये, इससे मेरे सभी दु:ख मिट गये और आपने मुझसे नाव माँगकर मेरी दरिद्रताको समाप्तकर मुझे बड़ा बना दिया।'

हे रघुनन्दन! मुझे अब जो कृपानुभूति हो रही है, वह लगातार बनी रहे बस! और कुछ नहीं चाहिये—

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥

हे दशरथनन्दन! आपके श्रीचरणोंका जो अवसर ब्रह्मा, शंकर और जनकजीको प्राप्त हुआ, वही अवसर आज मुझे भी मिला है।

हे नाथ! मुझसे पहले आपके चरण श्रीजनक महाराजने धोये, श्रीसीताजी चरण धोनेवालेकी पुत्री हैं, और मैं भी तो चरण धोनेवाला ही हूँ। यदि मैं अँगूठीको लेता हूँ, तो मैं कैसा चरण धोनेवाला हूँ कि उस बेटीसे अँगूठीको उतराईमें ले लूँ। हे रघुनन्दन! यदि उस बेटीको मैं कुछ दे नहीं सकता तो मैं ले भी नहीं सकता और कहने लगा—

फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा।

फिर भी श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीने बहुत आग्रह किया, लेकिन केवटने कुछ नहीं लिया। इसके बाद करुणानिधान श्रीरामने उसे निर्मल भक्तिका वरदान देकर ससम्मान विदा किया।

भगवान् जब चौदह वर्ष बाद वापस आये, तो केवटसे मिलन हुआ। श्रीरामने केवटसे उसकी इच्छा पूछी तो केवटने कहा—प्रभो! मुझे अपने साथ अयोध्या ले चलो, तब श्रीरामने केवटको विमानपर आरूढ़ कर लिया और अयोध्या ले आये। अयोध्यामें भगवान् श्रीरामके राजतिलकके अवसरपर जब श्रीभरतजीने भगवान् रामसे विशेष मेहमानके बारेमें पूछा, तो श्रीरामचन्द्रजीने इस सम्मानके लिये विशिष्ट मेहमानके रूपमें केवटका ही नाम लिया और श्रीरामने उसे श्रीभरतजीकी भाँति ही अपने हृदयसे लगा लिया। इस समय केवटको कृपानुभूतिका चरमोत्कर्ष अनुभव हुआ।

इस प्रकार केवट सब प्रकारसे धन्य हो गया। केवटको अब यह अहसास हो गया कि जिनका नाम, रूप कल्पवृक्षकी भाँति चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)-को देनेवाला है, उसे त्यागकर बबूलको कौन पाले! इस प्रकार उसने अपने अलबेले अन्दाजसे प्रभुकी कृपानुभूति प्राप्त की।

अत: निष्कर्षरूपमें कहा जा सकता है कि भक्तराज केवट अपने-आपमें अनोखा, विचित्र, अद्भुत, बेजोड़, मोहक, रमणीय, आकर्षक तथा आनन्दपूर्ण और अलबेला भक्त है, जो प्रकृतिसे धार्मिक, श्रद्धालु, पवित्र और पुण्यात्मा भी है। इसीलिये केवटको प्रभु श्रीरामकी कृपाका उत्कृष्ट प्रसाद प्राप्त हुआ।

श्रीरामचरितमानस—साहित्य ग्रन्थ ही नहीं, मन्त्रोंकी खान भी

(डॉ० श्रीरमेश नारायणजी पुरोहित)

आचार्य रामचन्द्रजी शुक्लने तुलसीदासजीको हिन्दी-साहित्यका महाकवि माना और उनके ग्रन्थ 'रामचरितमानस' को हिन्दीका श्रेष्ठ महाकाव्य स्वीकार किया है। इससे पहले (तुलसीदासजीसे पहले) रीतिकालके कवियोंके बीच ही महाकवि स्वीकार करनेकी बात चल रही थी। इस सन्दर्भमें विद्वानोंमें मतभेद था, कोई केशवदासको मानते थे तो कोई बिहारीको, तो कोई देव आदिके बीच ही महाकवि स्वीकार कर रहे थे। शुक्लजीने ही तुलसीदासजीको हिन्दीका महाकवि स्वीकार किया है। तुलसीदासजीकी मानस-रचनाकी यात्रा दो वर्ष सात माह तथा छब्बीस दिनमें पूर्ण हुई थी।

'रामचरितमानस' तो गुणोंका सागर है। यह वह सागर है, जिसमें गोता लगानेपर रत्न-ही-रत्न प्राप्त होते हैं। समुद्रका पानी खारा होता है, वह किसी कामका नहीं है, परंतु रामचरितमानसरूपी समुद्रके जलका पान किया जा सकता है। इस मानसरूपी समुद्रमें जो गहराईसे गोता लगाता है, उसका ही जीवन सफल होता है अर्थात् वही इस भवसागरसे पार होता है। मानसका तो प्रत्येक छन्द ही मन्त्र है। जीवनको सफल बनानेके लिये रामचरितमानसका अध्ययनकर उसे जीवनमें अपनाना चाहिये। बिहारीने ठीक ही लिखा है—

या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग त्यों त्यों उज्जलु होइ॥

यहाँपर यह लिखना ठीक है कि राम तथा कृष्णमें कोई अन्तर नहीं है। राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं। दोनोंका स्वरूप एक ही है। दोनों ही भगवान् विष्णुके अवतार हैं। दोनों ही श्याम रंगके हैं। बिहारीने कहा कि श्याम रंगमें जैसे-जैसे व्यक्ति डूबता जाता है, वैसे-वैसे वह अधिक उज्ज्वल होता जाता है। वह श्याम (काला) नहीं रहता है। काला रंगसे तात्पर्य पापसे है। व्यक्ति जैसे-जैसे राम तथा कृष्णके रंग अर्थात् उनकी भक्तिके रंगमें डूबता है, वैसे ही उसका हृदय शुद्ध तथा उज्ज्वल हो जाता है। उसके हृदयमें श्याम अर्थात् कालापन (पाप, कपट आदि) नहीं रहता है। उसका हृदय पापरहित हो जाता है। उस है और मन ही उसका शत्रु है। इस मनको रामचरितमानसके अध्ययनमें लगा दे, तो वह उस व्यक्तिका कल्याण कर देता है। मानसमें मन लगानेपर व्यक्तिको लौकिक तथा अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। मानसरूपी सम्पदा युगों-युगोंतक चलती रहेगी। यह सम्पदा तो अक्षुण्ण है।

गोस्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस केवल हिन्दी-साहित्यका ही श्रेष्ठ महाकाव्य हो, ऐसा ही नहीं है, इसके समान विश्वका कोई दूसरा महाकाव्य नहीं है, ऐसा विद्वान् तथा सन्त मानते हैं। बाबा तुलसीदासजी वास्तवमें सन्त थे। हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें विद्वानोंने सन्त तथा भक्तमें भेद किया है। जो सगुणकी भक्ति करते हैं, उन्हें भक्त कवि कहा है और जो निर्गुणमें भी ज्ञानाश्रयी धाराके कवि हैं, उन्हें सन्त कहा गया है। तुलसीदासजीको रामका भक्त कहा यह ठीक ही है कि वे भक्त थे, परंतु सामान्य बोल-चालमें तुलसीदासजी सन्त ही हैं। हिन्दी-साहित्यके इतिहासकार डॉ० ग्रियर्सनने कहा है कि 'बुद्धके बाद अगर भारतमें कोई सन्त हुआ है, तो वे हैं तुलसीदास।' गोस्वामीजीने मानसमें 'सन्त' शब्दका ज्यादा प्रयोग किया है, वे भक्त और सन्तमें अन्तर नहीं मानते हैं। सन्त तथा असन्तमें जो भेद किया, वह जीवनमें मन्त्रके रूपमें लेना चाहिये। वे दोनोंके बारेमें लिखते हैं—

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।

(रा०च०मा० १।५।३-४)

अब मैं सन्त और असन्त दोनोंके चरणोंकी वन्दना एक साथ करता हूँ; क्योंकि दोनों ही दुःख देनेवाले हैं, दोनोंमें कुछ ही अन्तर कहा गया है। इसमें एक अर्थात् सन्त लोग तो जबकि हमसे बिछुड़ते हैं, तो प्राण हर लेते हैं और दूसरे अर्थात् असन्त लोग (दुष्ट लोग) भेंट होते ही दारुण अर्थात् भयंकर दुःख देते हैं। तात्पर्य यह है कि सन्तोंका बिछोह मृत्युके समान दुःखदायी है और असन्तों (दुष्ट लोगों)-का मिलना दुःखदायी होता है।

सन्त तथा असन्त इस संसारमें समान रूपसे उत्पन्न होते हैं। मानसमें कहा गया है—

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।

साधु तथा असाधु अर्थात् सन्त एवं असन्त दोनों एक साथ ही इस जगत्में पैदा होते हैं (माँके पेटसे उत्पन्न होते हैं), पर कमल और जोंककी तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। कमल और जोंककी उत्पत्ति जलमें ही होती है, पर गुण दोनोंके अलग-अलग हैं, इसीसे सन्त और असन्तको इनके (कमल और जोंक)-के समान कहा गया है। साधु तो अमृतके समान होते हैं और असाधु मदिरा (सुरा)-के समान होते हैं। यद्यपि संसारमें दोनों (अमृत और मदिरा)-को उत्पन्न करनेवाला (पिता) अगाध समुद्र ही है। समुद्र-मन्थनके बाद ही सुधा और सुराकी उत्पत्ति हुई। संसारमें सन्त और असन्त अर्थात् किसके साथ रहना है और किसके साथ नहीं रहना—इस मन्त्रको जीवनमें अपना ले तो वे व्यक्ति कभी दुखी नहीं रहते हैं। रामचरितमानस तो वह समुद्र है, जिसमें अमृत-ही-अमृत प्राप्त होता है। जो लोग सन्त तथा असन्तके स्वभावको पहचान लेते हैं, वे जीवनकी नावको भवसागरसे पार ले जाते हैं।

रामचरितमानसकी एक चौपाईको अगर जीवनमें धारण कर ले अर्थात् उस रास्तेपर चले तो व्यक्ति कभी भी दुखी नहीं होता है। आजके युगमें डॉक्टरके पास जाते ही वह बीमारीका कारण एक ही बताता है, वह है तनाव। व्यक्ति तनावमें रहता है, उससे सभी बीमारियाँ होती हैं। मानसके एक मन्त्रको रटनेसे ही सभी तनाव दूर हो जाते हैं। भगवान् शिवशंकरजीने यह बात कही है, जब माता सती भगवान् श्रीरामकी परीक्षा लेने गयी थीं, तो भगवान् शंकरको चिन्ता होने लगी। वे सोचते हैं कि सती किस प्रकारसे परीक्षा लेगी। वे द्वन्द्वमें ही रहते हैं, उससे बाहर निकलनेके लिये एक ही मन्त्र बताते हैं। वह इस प्रकार है—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

वही होगा जो भगवान् रामजीने रच रखा है अर्थात् प्रभु श्रीरामने पहलेसे ही ऐसी रचना कर रखी है। कौन तर्क करके तूल करे, अर्थात् इस विषयमें विवाद या सोचनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहकर भगवान् शंकर भगवन्नामका जप करने लगे अर्थात् राम-राम रटने लगे और सतीजी वहाँ गयीं, जहाँ सुखके धाम प्रभुजी थे। मानसके इस मन्त्रको व्यक्ति जीवनमें ग्रहण कर लेता है, तो वह कभी भी दुखी नहीं होगा। उसकी सोच यह हो जाती है कि जो भी हो रहा है, वह रामजीने पहलेसे ही उसे सोच रखा है। भगवान् राम जो भी करते हैं, उसमे मनुष्यकी भलाई ही है। सभी कार्य भगवान् रामके हैं। भगवान् राम जो भी करते हैं, उसमें मनुष्यकी भलाई ही है। सभी कार्य भगवान् रामके द्वारा ही होते हैं। मनुष्य तो केवल तथा केवल माध्यम है। उस सृष्टिको चलानेवाले भगवान् राम ही हैं। मनुष्यके जीवनमें कितना ही बड़ा संकट क्यों आ जाय, वह उस मन्त्रके द्वारा उस संकटसे पार उतर जाता है। रामजी ही इस संकटसे पार करेंगे। जिसकी रामके प्रति श्रद्धा होती है, वह कभी भी संकटमे नहीं आ सकता है। रामजी जीवनकी रक्षा करेंगे। रामरूपी जो दवा ले लेता है, वह सांसारिक रोगोंसे दूर हो जाता है। रामचरितमानस ऐसी सम्पदा है, जो कभी भी समाप्त नहीं हो सकती है। मानसमें ऐसे बहुतसे मन्त्र अर्थात् रत्न हैं, जिसे सुधी लोग अर्थात् परम भक्त ही प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् भोलेनाथ 'राम-राम' जपते हैं, तो राम शिवका ध्यान करते हैं। इनकी मायाको कोई नहीं जान सकता है, इसके लिये स्वयं देवोंके देव महादेवजी मानसमे कहते हैं—

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूँठ कहावा।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना।

रामजीकी माया क्या नहीं कर सकती है। रामके लिये कोई कार्य असम्भव नहीं है। कहते भी हैं कि ***'श्रीरामजीकी माया, कहीं धूप कहीं छाया'*** साधु, सन्त, भक्त, विद्वान्, पण्डित आदि भी मानसरूपी सागरकी गहराईको नहीं नाप सके, तो सामान्य मानव उसे कैसे नाप सकता है। यह सही है कि रामचरितमानस-रूपी समुद्रमे उतरनेके बाद व्यक्ति डूबता नहीं है, वह भवसागरसे पार हो जाता है अर्थात् तर जाता है, उसकी मुक्ति हो जाती है, वह भगवान् रामके धाममें जाता है, ऐसा सन्तों एवं भक्तोंका विचार है; जो सत्य है।

हिन्दूका वैशिष्ट्य है हिन्दुत्व

(प्रो० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम')

प्राचीन कालसे ही भारतीय संस्कृतिके विवेचनके सन्दर्भमें हिन्दू एवं हिन्दुत्वकी परिशुद्ध अवधारणा सुप्रचलित रही है। सृष्टि-पूर्वसे हिमालय भगवद्भूमि भारतवर्षमें सुप्रतिष्ठित रहा है। पावनताका उत्स और भारतीय जीवनका गौरव-शिखर है वह। उसकी पवित्र गुफाओंमें एवं प्रोज्ज्वल शिखरोंपर तपस्या करनेवाले परम सुविज्ञ ऋषियोंके माध्यमसे ब्रह्म-नाद—**'ॐ खं ब्रह्म'** (शुक्लयजुर्वेद, ४०।१७) उच्चरित हुआ। इसके साथ ही हीनता, नीचता, मलिनता, संकीर्णता, रुग्णमानसिकता आदिका परित्यागकर उच्चता, पावनता, हितकारिता, शालीनता, संवेदनशीलता, उदारता, क्षमाशीलता, सत्यवादिता, त्यागमयता आदिसे हिन्दूकी विशिष्टता—हिन्दुत्वका सम्यक् उद्घोष भी किया गया—

'हीनं दूषयति स हिन्दू।'

(मेरुतन्त्र-उल्लिखित)

तत्त्वत: धर्म-प्राण हिन्दू 'आर्य' की महती संज्ञासे भी विभूषित हैं। 'आर्य' शब्द श्रेष्ठत्वका द्योतक है। विवेकवान् तथा आचारवान् होना मानव-जीवनकी सर्वश्रेष्ठताका अभिसूचक है। सत्य तथा त्यागका स्थान अतुलनीय है अवश्य, पर आचार उससे भी श्रेष्ठ है—

'विद्वद्भि: सेवित: सद्भि:'

नि:सन्देह, वेदादि-विहित सत्कर्मोंका निष्ठापूर्वक पालन सुसंस्कृत हिन्दुओंके जीवनका अन्यतम निदर्शन है। यही हिन्दुत्व है—हिन्दूका विलक्षण लक्षण है सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक स्तरपर।

हिन्दू सनातन धर्मावलम्बी हैं। सनातनधर्म भगवान् विष्णुपर आधृत है—

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्म: सनातन:।
तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञा: सदक्षिणा:॥

(श्रीमद्भा० १०।४।३९)

वेद, गौ, ब्राह्मण, तप तथा यज्ञ सनातन धर्मके विश्व-विश्रुत पाँच प्रमुख आधार हैं। हिन्दू एवं हिन्दुत्वके अवगत होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

अतीत, वर्तमान और भविष्यका सर्वोत्तम दिग्दर्शक वेद है—**'सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।'** (मनुस्मृति २।७) कितनी श्लाघनीय है वेद-वाणी।

'स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु।'

(अथर्ववेद १।३१।४)

अर्थात् श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सबको माता-पिताकी सेवा करनी चाहिये। ज्ञान-भक्ति-कर्मका इससे उत्कृष्ट निदर्शन और कुछ नहीं हो सकता। हिन्दुत्वका प्रबलतम प्रमाण है यह। राष्ट्रभक्ति एवं ईश्वरभक्तिकी सत्प्रेरणा मिलती है इससे।

गौकी महत्ता इस बातकी विशिष्टतामें दृष्ट होती है कि सबकी माता है वह—

'गावो विश्वस्य मातर:' (विष्णुधर्मोत्तर २।४२।२)

इतना ही नहीं, वह तो **'माता सर्वदेवानां'** (स्कन्दपुराण, धर्मारण्य०) है। गायका दूध, दही तथा मक्खन **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि:'** (छान्दोग्योपनिषद् ७।२६।२)-का अन्यतम दृष्टान्त है। ऐसी महिमामयी गायकी पूर्ण श्रद्धाभक्तिसे सेवा करना हिन्दुत्वका प्रमुख लक्षण है।

सत्यत: हिन्दुत्व प्रतिपल दर्शित होता रहता है तपस्या तथा ईश्वरोपासनामें—विशेषकर पीड़ितोंकी सेवामें लगे रहनेसे—

तप्यन्ते लोकतापेन साधव: प्रायशो जना:।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मन:॥

(श्रीमद्भा० ८।७।४४)

जीव-सेवासे परमात्मा अधिक प्रसन्न रहा करते हैं, इस परम सत्यसे आर्यजन—हिन्दू सृष्टिके आदिकालसे ही सुपरिचित रहा है; **'यस्यायं विश्व आर्यो दास:।** (शु०यजु० ३३।८२)

आर्यावर्त हिन्दू एवं हिन्दुत्वका बोधक है। महान् चिन्तक और ग्रन्थकार राजशेखरने 'काव्यमीमांसा' में

जहाँ आर्यजन हिन्दू रहते हैं, सदाचारपूर्वक अर्थात् हिन्दुत्वका उत्कृष्ट परिचय देते हुए दिव्य जीवन व्यतीत करते हैं, उसे आर्यावर्त कहा जाता है—

पूर्वापरयोः समुद्रयोर्हिमवद्विन्ध्ययोश्चान्तरमार्यावर्त्तः।
तस्मिंश्चातुर्वर्ण्यं चतुराश्रम्यं च तन्मूलश्च सदाचारः॥

सनातन-जीवन-पद्धतिमें ब्राह्मणका लक्षण निम्नांकित है—

क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः।
अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥

(पद्मपुराण)

सच तो यह है कि श्रेष्ठ आचार—सत्य, तप, त्याग, विवेक, ईश्वरोपासना, दया, क्षमा, धर्म, सद्भाव, परोपकार, आदर, सत्कार, विनम्रता, भजन, अर्चन-पूजन आदिका विधान विस्तारपूर्वक किया गया है हिन्दुओंके लिये। सत्कर्मोंका श्रद्धा-निष्ठासे पालन करनेपर हिन्दुत्वका तेज सदा प्रखर बना रहता है।

तप भारतीय जीवनका मूलमन्त्र है, क्योंकि वह भगवान् विष्णुका हृदय है। भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे कहते हैं कि तपस्या मेरी अक्षुण्ण शक्ति है, जिससे सभी लोकोंकी सृष्टि, पालन और विलयका क्रम चलता रहता है—

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः॥

(श्रीमद्भा० २।९।२३)

महर्षि वाल्मीकिके अनुसार देवता, ऋषि-मुनि, सामान्य मानव एवं अन्य सभी जीवोंका भाग्य कर्मसे ही निश्चित होता है—

कर्मणां फलभागिनः। (वा०रा० २।१०९।२८)

सचमुच, तप हिन्दू तथा हिन्दुत्वके वैशिष्ट्यका प्रबलतम आधार रहा है। इसीसे महाकवि तुलसीदासजीने लोकभाषाके माध्यमसे व्यापक स्तरपर तपको सुप्रतिष्ठापित किया, जो सभी युगमें मान्य और अति उत्कृष्ट जीवनके लिये परम उपयोगी बना रहेगा—

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥

(रा०च०मा० १।७३।३-४)

स्वस्थ-सुव्यवस्थित रखनेके लिये। इससे मनुष्य परार्थकी ओर अग्रसर होता है। हिन्दुत्वका प्रमुख लक्षण है, सबका शुभमंगल करना।

ईश्वरके प्रति समर्पणकी परिशुद्ध भावनाका समुचित विकास होता है, यज्ञ करनेसे। तप तथा यज्ञ—सत्कर्म और समर्पणमें निहित है मानवताका कल्याण—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९।२७)

परमात्माकी महती कृपाके बिना कोई भी महत् कार्य सम्भव नहीं होता—'**न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चन।**' (ऋग्वेद १०।११२।९)

यह है हिन्दू और हिन्दुत्वका सम्यक् बोध।

हिन्दुत्व वह अलभ्य गुण है, जो मानवको सफल-सार्थक जीवनके उच्चतम धरातलपर सुप्रतिष्ठित कर देता है। यथा—जब भी जो भी सुनें, केवल कल्याणकारी वचन सुनें, सभी स्थानोंमें भद्रतापूर्वक ही आँखोंसे देखा करें, शरीरके सारे अवयव सदा स्वस्थ-संयमित रहकर शिष्ट आचरण ही किया करें, सदा-सर्वदा सत्कर्म ही हमारा उद्दिष्ट रहे—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।

(शुक्लयजुर्वेद २५।२१)

हिन्दू-संस्कृतिमें शिक्षाके क्षेत्रमें सर्वाधिक महत्त्व श्रद्धाको दिया गया है—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं**' (गीता ४।३९), समरसताका प्रतिमान व्यापक रूपमें प्रतिष्ठापित है—'**सर्वत्र समबुद्धयः**'—(गीता १२।४) पूर्ण मनोयोग-पूर्वक संसारके सभी प्राणियोंके लिये काम करना सर्वहितका आदर्श उपस्थित करना—'**सर्वभूतहिते रताः**' (गीता ५।२५)।

निर्विवाद रूपसे विश्वका सबसे प्राचीन तथा सर्वोत्कृष्ट जीवन-दर्शन है हिन्दुत्व। अमोघ और अक्षुण्ण सांस्कृतिक चेतना है यह धर्म-प्राण हिन्दुओंकी। मानवताकी पुण्यभूमि भारतमें पवितमा देवनदी गंगाजीकी विद्यमानताके सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध ब्रह्म-वाणी है—'**सा प्रथमा संस्कृति-**

सच तो यह है कि गोमाता, गंगामाता तथा तुलसीमाताके शुभ पूजार्चनसे धरतीसहित अन्तरिक्ष और आकाशतक परम प्रसन्नताका वातावरण उपस्थित रहा करता है। जिस प्रकार भूख-प्याससे व्याकुल शिशु माताका पावन सान्निध्य पाकर अति प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार गंगामाताके दर्शनसे ही दिव्य आनन्दकी विलक्षण अनुभूति होने लगती है—

उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयार्दिताः।
श्रेयस्कामास्तथा गङ्गामुपासन्तीह देहिनः॥

(महाभारत, अनु० २७।५०)

इसके लिये अनिवार्यता है श्रद्धा-भक्तिसे हिन्दुत्वको परखनेकी।

बोधकथा—

कष्टोंका मूल्य

किसी स्थानपर सन्तोंकी एक सभा चल रही थी, किसीने एक घड़ेमें गंगाजल भरकर वहाँ रखवा दिया, ताकि सन्तजनको जब प्यास लगे तो वे गंगाजल पी सकें। सन्तोंकी उस सभाके बाहर एक व्यक्ति खड़ा था, उसने गंगाजलसे भरे घड़ेको देखा, तो उसे तरह-तरहके विचार आने लगे। वह सोचने लगा—'अहा! यह घड़ा कितना भाग्यशाली है, एक तो इसमें किसी तालाब, पोखरका नहीं; बल्कि गंगाजीका जल भरा गया और दूसरे यह अब सन्तोंके काम आयेगा। इसे सन्तोंका स्पर्श मिलेगा, उनकी सेवाका अवसर मिलेगा, ऐसी किस्मत किसी-किसीकी ही होती है।'

घड़ेने उसके मनके भाव पढ़ लिये और वह बोल पड़ा—बन्धु! मैं तो मिट्टीके रूपमें शून्य पड़ा था, किसी कामका नहीं था, कभी नहीं लगता था कि भगवान्‌ने हमारे साथ न्याय किया है। फिर एक दिन एक कुम्हार आया, उसने फावड़ा मार-मारकर हमको खोदा और गधेपर लादकर अपने घर ले गया। वहाँ ले जाकर हमको उसने रौंदा, फिर पानी डालकर गूँथा, चाकपर चढ़ाकर तेजीसे घुमाया, फिर गला काटा, फिर थापी मार-मारकर बराबर किया। बात यहीं नहीं रुकी, उसके बाद आँवेके अन्दर आगमें झोंक दिया जलनेको। इतने कष्ट सहकर बाहर निकला तो गधेपर लादकर उसने मुझे बाजारमें भेज दिया, वहाँ भी लोग ठोंक-ठोंककर देख रहे थे कि ठीक है कि नहीं? ठोकने-पीटनेके बाद मेरी कीमत लगायी भी तो क्या! बस २० से ३० रुपये, मैं तो पल-पल यही सोचता रहा कि 'हे ईश्वर! सारे अन्याय मेरे ही साथ करना था, रोज एक नया कष्ट एक नयी पीड़ा देते हो, मेरे साथ बस अन्याय-ही-अन्याय होना लिखा है।' भगवान्‌ने कृपा करनेकी भी योजना बनायी है, यह बात थोड़े ही मालूम पड़ती थी।

किसी सज्जनने मुझे खरीद लिया और जब मुझमें गंगाजल भरकर सन्तोंकी सभामें भेज दिया, तब मुझे आभास हुआ कि कुम्हारका वह फावड़ा चलाना भी भगवान्‌की कृपा थी। उसका वह गूँथना भी भगवान्‌की कृपा थी, आगमें जलाना भी भगवान्‌की कृपा थी और बाजारमें लोगोंके द्वारा ठोंका जाना भी भगवान्‌की कृपा ही थी। अब मालूम पड़ा कि सब भगवान्‌की कृपा-ही-कृपा थी।

परिस्थितियाँ हमें तोड़ देती हैं, विचलित कर देती हैं। इतनी विचलित कि भगवान्‌के अस्तित्वपर भी हम प्रश्न उठाने लगते हैं। क्यों हम सबमें इतनी शक्ति नहीं होती कि ईश्वरकी लीला समझ सकें। इसी नादानीमें हम ईश्वरद्वारा कृपा करनेसे पूर्व की जा रही तैयारीको समझ नहीं पाते। बस, कोसना शुरू कर देते हैं।

ईश्वरद्वारा ली जा रही परीक्षाकी घड़ीमें भी हम सत्य और न्यायके पथसे विचलित नहीं होते, तो ईश्वरकी अनुकम्पा होती जरूर है, किसीके साथ देर तो किसीके साथ सवेर। यह सब पूर्वजन्मोंके कर्मोंसे भी तय होता है कि ईश्वरकी कृपादृष्टिमें समय कितना लगना है। घड़ेकी तरह परीक्षाकी अवधिमें जो सत्यपथपर टिका रहता है, वह अपना जीवन सफल कर लेता है।'

अतः सदैव प्रसन्न रहना चाहिये। जो प्राप्त है, वही पर्याप्त है।

भक्त-गाथा—

परम भागवत राजा अम्बरीष

(श्रीलालजी मिश्र)

राजर्षि अम्बरीष बड़े भाग्यवान् थे। वे मनुके प्रपौत्र तथा नाभागके पुत्र थे। पृथ्वीके सातों द्वीप, अचल सम्पत्ति एवं अतुलनीय ऐश्वर्य उनको प्राप्त था। यद्यपि ये सब साधारण मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ हैं, फिर भी वे इन्हें स्वप्नतुल्य समझते थे; क्योंकि वे जानते थे कि जिस धन-वैभवके लोभमें पड़कर मनुष्य घोर नरकमें जाता है, वह केवल चार दिनकी चाँदनी है। भगवान् श्रीकृष्णमें और उनके भक्तोंमें उनका परम प्रेम था। उस प्रेमके प्राप्त हो जानेपर तो यह सम्पूर्ण विश्व और उसकी सारी सम्पत्तियाँ मिट्टीके ढेलेके समान जान पड़ती हैं। अम्बरीषके पैर भगवान्‌के तीर्थोंकी पैदल यात्रा करनेमें ही लगे रहते। उन्होंने अपने सारे कर्म सर्वात्मा एवं सर्वान्तरयामी भगवान्‌के प्रति समर्पित कर दिये थे और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार वे इस पृथ्वीका राज्य करते थे। इनकी प्रजा भी भगवद्भावभावित होकर भगवान्‌के उत्तम चरित्रोंका श्रवण तथा गायन करती। प्रजाजनोंको सांसारिक भोग-सामग्री आकर्षित नहीं कर पाती थी; क्योंकि उनके हृदयमें अनन्त प्रेमका दान करनेवाले श्रीकृष्णके नित्य-निरन्तर दर्शन होते रहते थे। राजा अम्बरीष इस प्रकार तपस्यासे युक्त भक्तियोग तथा प्रजापालनरूप स्वधर्मद्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करने लगे और शनैः-शनैः उन्होंने सब प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग कर दिया। उनकी अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उनकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया था, जो विरोधियोंको भय देनेवाला एवं भगवद्भक्तोंका रक्षक है।

राजा अम्बरीषकी पत्नी भी उन्हींके समान धर्मशील, संसारसे अनासक्त एवं भक्तिपरायण थीं। एक बार उन्होंने अपनी पत्नीके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिये एक वर्षतक द्वादशीप्रधान एकादशी-व्रत करनेका नियम ग्रहण किया। व्रतकी समाप्ति होनेपर कार्तिक महीनेमें उन्होंने तीन रातका उपवास किया और भगवान् श्रीकृष्णकी महाभिषेककी विधिसे समस्त विहित सामग्रियोंके साथ विधिवत् अभिषेक एवं पूजन किया। तत्पश्चात् पहले ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट एवं अत्यन्त गुणकारी भोजन कराकर उन लोगोंके घर साठ करोड़ गौएँ सुसज्जित करके भेज दीं। जब ब्राह्मणोंको सब कुछ मिल चुका, तब राजा उन लोगोंसे आज्ञा लेकर व्रतका पारण करनेकी तैयारी करने लगे। उसी समय शाप और वरदान देनेमें समर्थ दुर्वासाजी भी उनके यहाँ अतिथि-रूपमें पधारे।

राजा अम्बरीष उन्हें देखते ही स्वागतार्थ उठकर खड़े हो गये और यथायोग्य आसन देकर बैठाया। विविध सामग्रियोंसे उनकी पूजा की तथा उनके चरणोंमें प्रणत होकर भोजनके लिये अम्बरीषने प्रार्थना की। दुर्वासाजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिये यमुनाजीके तटपर गये। स्नान-ध्यान करनेमें समय इतना बीत गया कि द्वादशी केवल घड़ीभर शेष रह गयी। धर्मज्ञ अम्बरीषने धर्मसंकटमें पड़कर ब्राह्मणोंके साथ परामर्श किया और कहा—'ब्राह्मणो! श्रुतियोंमें ऐसा कहा गया है कि जल पी लेना, भोजन करना भी है, नहीं भी करना है। इसलिये इस समय केवल जल पीकर पारण किये लेता हूँ।' ऐसा निश्चय करके अम्बरीषने मनमें भगवान्‌का चिन्तन करते हुए जल पी लिया। दुर्वासाजी आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होकर यमुनाजीसे वापस आ गये। जब राजाने आगे बढ़कर उनका अभिनन्दन किया, तो दुर्वासाजीने अनुमानसे ही समझ लिया कि राजाने पारण कर लिया है। वे क्रोधसे थर-थर काँपने लगे। उन्होंने हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीषसे डाँटकर कहा—'अहो! देखो तो सही, यह कितना क्रूर है, धनके मदमें मतवाला हो रहा है, भगवान्‌की भक्ति तो इसे छूतक नहीं गयी है और यह अपनेको बड़ा समर्थ मानता है। मैं इसका अतिथि होकर

बिना खिलाये स्वयं खाकर इसने धर्मका उल्लंघन करके कितना बड़ा पाप किया है। अच्छा देख, तुझे अभी इसका फल चखाता हूँ।' यह कहते-कहते उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी तथा अम्बरीषको मार डालनेके लिये एक कृत्या उत्पन्न की। वह कृत्या आगके समान जलती हुई हाथमें तलवार लेकर राजाके ऊपर टूट पड़ी। राजा अम्बरीष एक पग भी विचलित नहीं हुए। भगवान्ने पहलेसे ही उनकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्र नियुक्त कर रखा था, उसने तत्काल कृत्याको जलाकर

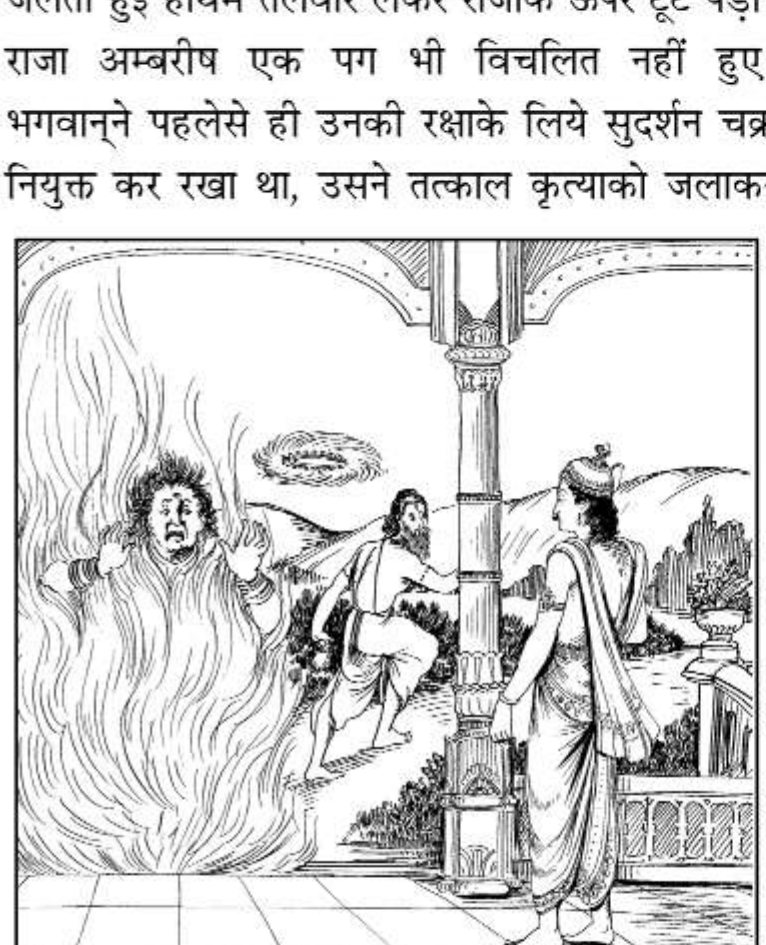

राखका ढेर कर डाला और दुर्वासाकी तरफ चल पड़ा। सुदर्शन चक्रको अपनी तरफ आते हुए देखकर दुर्वासाजी अपने प्राण बचानेके लिये वहाँसे एकाएक भाग खड़े हुए। जब दुर्वासाजीने देखा कि चक्र तो मेरे पीछे लग गया है, तब सुमेरुपर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेके लिये वे उसी ओर दौड़े। दुर्वासाजी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल-वितल आदि नीचेके लोकों एवं स्वर्गतक गये, परंतु उन्होंने प्रतिक्षण असह्य तेजवाले सुदर्शन चक्रको अपने पीछे लगे देखा। कहीं भी उनकी किसीने रक्षा नहीं की, तब वे अत्यधिक भयभीत हो गये और ब्रह्माजीके पास जाकर बोले—ब्रह्माजी! आप स्वयम्भू हैं, भगवान्के इस तेजोमय चक्रसे मेरी रक्षा कीजिये। ब्रह्माजीने व्यक्त की, तब भगवान्के चक्रसे सन्तप्त होकर वे कैलासवासी भगवान् शंकरकी शरणमें गये।

भगवान् शंकरने भी यह कहकर असमर्थता व्यक्त की कि हम सब भगवान्की मायाको नहीं जान सकते, यह चक्र उन्हीं परम पुरुष सर्वेश्वरका अस्त्र है, यह हमलोगोंके लिये असह्य है। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। वहाँसे भी निराश होकर दुर्वासाजी भगवान्के परमधाम वैकुण्ठमें गये। वे काँपते हुए भगवान्के चरणोंमें गिर पड़े और कहा—'हे अच्युत! हे अनन्त प्रभो! मैं अपराधी हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। आपके परम प्रभाव न जाननेके कारण ही मैंने आपके प्रिय भक्तका अपराध किया है। प्रभो! आपके नामके उच्चारण करनेमात्रसे ही नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है।'

भगवान्ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ, इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने आपको चाहता हूँ और न अपनी भार्या विनाशरहित लक्ष्मीको। जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ? जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं। मेरे अनन्य प्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते, फिर समयके फेरसे नष्ट हो

मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय मैं स्वयं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

दुर्वासाजी! इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणोंके लिये तपस्या और विद्या परम कल्याणके साधन हैं, परंतु ब्राह्मण यदि उद्दण्ड और असभ्य हो जाय, तो वे ही दोनों उलटा फल देने लगते हैं। सुनिये, मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। जिसका अनिष्ट करनेसे आपको इस विपत्तिमें पड़ना पड़ा है, आप उसी नाभागनन्दन परम भाग्यशाली राजा अम्बरीषके पास जाइये और उनसे क्षमा माँगिये, तब आपको शान्ति मिलेगी।

भगवान्‌की आज्ञानुसार दुर्वासाजी सुदर्शन चक्रकी ज्वालासे जलते हुए राजा अम्बरीषके पास आये और अत्यन्त दुखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये। इससे राजा बहुत लज्जित हो गये और दुखी होकर सुदर्शन चक्रकी स्तुति करने लगे और कहा—यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्मका पालन किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों, भगवान् समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं, यदि मैंने समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें उन्हें देखा हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो दुर्वासाजीके हृदयकी सारी जलन मिट जाय।

इस प्रकार अम्बरीषकी स्तुतिसे सुदर्शन चक्र शान्त हो गया और दुर्वासाजीकी जलन भी शान्त हो गयी। उन्होंने अम्बरीषको अनेकानेक उत्तम आशीर्वाद देते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनसे अनुमति लेकर आकाशमार्गसे उस ब्रह्मलोककी यात्रा की, जो केवल निष्काम कर्मसे ही प्राप्त होता है। जब चक्रसे भयभीत होकर दुर्वासाजी भागे थे, तबसे लेकर उनके लौटनेतक एक वर्षका समय बीत गया था। इतने दिनोंतक राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी आकांक्षासे केवल जल पीकर ही रहे। ऐसा था परम पुनीत उदात्त चरित्र परम भागवत राजा अम्बरीषका! [**श्रीमद्भागवत-महापुराण**]

बोधकथा—

सच्चा सन्त

द्वारकाधीश मन्दिरकी पहली सीढ़ीके दाहिने किनारेपर वर्षोंसे एक दृष्टिहीन भिक्षुक टाट बिछाकर बैठा रहता था। मन्दिरमें आने-जानेवाले श्रद्धालु उसके टाटपर कभी आठ आने या एक रुपया डाल देते, जिसे वह हाथमें टटोलकर उठा लेता और टाटके नीचे रख देता। कुछ लोग उसके हाथपर भगवान्‌का प्रसाद भी रख देते थे। पासहीमें हलवाईकी दूकान थी। सर्दीके दिनोंमें रातको वह हलवाईकी भट्टीके सामनेकी गर्म जमीनपर पड़कर सो जाया करता था।

एक दिन उसे अपने आसपास कुछ हलचल लगी और बहुत-से लोगोंके पैरोंकी आहटका आभास हुआ। उसने कहा—'आज क्या हो रहा है?.....' एक युवक बोला—'भगवान्‌के अन्नकूटके लिये चन्दा इकट्ठा किया जा रहा है।' उसने जल्दीसे टाटके नीचे टटोला और सारे पैसे उठाकर युवकके हाथमें दे दिये। उसमें सौ रुपयेके तीन नोट थे और बाकी सब सिक्के थे। 'बाबा! आपने तो सारे पैसे दे दिये—कुछ तो कलके लिये भी रख लेते।'

'जिसने दिये हैं, उसीको अर्पण कर रहा हूँ। कलका हिसाब भी वही कर देगा।' यह कहकर सन्त पुनः ध्यानमग्न

तीर्थ-दर्शन—

कामरूप और माँ कामाख्या

(डॉ० श्रीश्यामबाबूजी शर्मा)

सांस्कृतिक परम्पराके विज्ञानके रूपमें संज्ञापित पूर्वोत्तर भारत रामायण, महाभारत, योगिनीतन्त्र, कालिकापुराण इत्यादि प्रख्यात ग्रन्थोंमें प्राग्ज्योतिष और कामरूपके रूपमें वर्णित है। कालिकापुराणमें कामरूपकी भौगोलिक सीमाओंका रेखांकन किया गया है—

बहुरोका नाम नदी करतोया प्रदक्षिणे।
उत्तरस्रवणी चास्ते तत् पूर्वं कामरूपकम्॥

अर्थात् करतोया नदीके दक्षिणभागमें बहुरोका नामकी एक नदी है, जो उत्तरकी ओर बहती हुई कामरूपके पूर्वभागमें स्थित है।

रामायण, महाभारतके समयके कई प्रसंगों यथा—कुरुक्षेत्र-युद्ध, अश्वमेध-यज्ञमें भी प्राग्ज्योतिषकी चर्चा है। कालिदासके रघुवंशम्में रघुके दिग्विजयके समय भी प्राग्ज्योतिष कामरूपका वर्णन आता है। गुप्त साम्राज्यके शिलालेखों और चीनी यात्री ह्वेनसांगके यात्रा-वर्णनके अलावा बाणभट्टके हर्षचरितमें भी कामरूपनरेश भास्कर ग्रन्थोंमें प्राग्ज्योतिषपुरको कामरूपकी राजधानी कहा गय है। कालान्तरमें यही प्राग्ज्योतिषपुर 'असम' कहा जाने लगा। 'असम'का शाब्दिक अर्थ है—जो समतल नहीं है मान्यता है कि संस्कृत शब्द 'अस्म' का अपभ्रंश असम है। इसका एक अर्थ अनुपम अथवा अद्वितीय भी ग्रहण किया जाता है। गिरिमालाओंसे घिरा होनेके कारण 'शैवालय भी इसका पर्याय है।

रामायणमें राजा कुशके पुत्रको इसका प्रतिष्ठापक बताया गया है। इस राज्यका विस्तार और गौरववृद्धि शैलाधिपति भगदत्तके समयमें ही विशेष रूपसे हुई थी इन्हीं राजा भगदत्तने महाभारत-युद्धमें कौरवोंके पक्षमे युद्ध किया था। कालिकापुराणके अनुसार प्रजापति ब्रह्माने यहीं बैठकर नक्षत्रोंकी सृष्टि की। इतिहासविदोंने प्राच्य ज्योतिर्विद्यानगरीके रूपमें इसकी स्थापना की महाबाहु ब्रह्मपुत्रद्वारा शासित यह क्षेत्र प्राचीनकालकी शिक्षा-संस्कृतिका केन्द्र था। मनीषीगण नवग्रहकी पहाड़ीपर

मुनियोंने भी अपना शान्तिमय जीवन यहीं बिताया था। पूर्वमें भारतीय संस्कृतिके विस्तारमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। समाधिस्थ शिवको कामदेवने कामबाण मारकर ध्यानभंग करनेकी जब कोशिश की, तो उन्होंने उसे भस्म कर दिया था। क्षमायाचनोपरान्त कामदेवको इसी क्षेत्रमें पुनर्जीवन मिला और यह स्थान कामरूप कहा गया।

कामरूपमें स्थित कामाख्यादेवीका मन्दिर इक्यावन शक्तिपीठोंमेंसे एक है। पिता दक्षद्वारा शिवके अपमानसे क्षुब्ध सतीने जब आत्मदाह कर लिया तो शिव उस मृत देहको लेकर ताण्डव करने लगे। शिवका मोह भंग करनेके लिये भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रसे माता सतीके मृत शरीरके इक्यावन भाग कर दिये। जिन-जिन स्थानोंपर माता सतीके अंग गिरे, वे शक्तिपीठ कहलाये। जिस स्थानपर माता सतीका योनिभाग गिरा, उससे कामाख्या महाशक्तिपीठकी उत्पत्ति हुई। कथा है कि नरक नामके असुरने कामाख्यादेवीके सामने विवाहका प्रस्ताव रखा। देवीने नरकके समक्ष शर्त रखी कि यदि वह एक रातमें ही मार्ग, घाट एवं मन्दिरके साथ एक विश्रामगृह बनवा दे तो वे उसके साथ विवाह कर लेंगी, परंतु यदि यह सब कुछ सूर्योदयके पूर्व न कर सका, तो उसकी मृत्यु निश्चित है। गर्वोन्मत्त असुरराज नरकने विश्वकर्माको बुलाकर काम शुरू करवाया, प्रभात होनेसे पूर्व विश्रामगृहका निर्माण पूर्ण होने ही वाला था कि महामायाके एक मायावी कुक्कुट (मुर्गे)-द्वारा रात्रि-समाप्तिकी सूचना दी गयी, नरकासुरने क्रोधित होकर मुर्गेका पीछा किया और ब्रह्मपुत्रके दूसरे छोरपर जाकर उसका वध कर डाला। यह स्थान आज भी 'कुक्कुटाचकि'के नामसे विख्यात है। बादमें भगवतीकी मायासे भगवान् विष्णुने नरकासुरका वध कर दिया। नरकासुरकी मृत्युके बाद उसका पुत्र भगदत्त कामरूपका राजा बना।

१६वीं शताब्दीमें कामरूप प्रान्तके राजा आपसमें लड़ने लगे, जिसमें कूच बिहार-रियासतके राजा विश्वसिंहने सबको परास्त कर दिया। इस युद्धमें अपने खोये भाईको खोजते-हेरते वे नीलांचल-पर्वतपर आ गये, जहाँ उन्हें एक वृद्ध महिला दिखायी दी। उसने राजा विश्वसिंहको करवायी तो कामदेवद्वारा बनवाये गये मूल मन्दिरका निचला हिस्सा मिला, जिसके ऊपर उन्होंने नूतन मन्दिरका निर्माण करवाया। इसीमें भगवतीकी महामुद्रा स्थित है। यहाँ देवीकी कोई मूर्ति नहीं है। एक कुण्ड-सा है, जो हमेशा फूलोंसे ढका रहता है। योनिके आकारके इस कुण्डसे हमेशा जल निकलता रहता है।

आषाढ़मासमें सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम पदमें प्रविष्ट होता है, तो पृथ्वी रजस्वला हो जाती है। सतीकी रजस्वला-अवस्थाको अम्बुवाची पर्वके रूपमें मनानेका पौराणिक वर्णन है। शास्त्रोंके अनुसार सतयुगमें यह पर्व सोलह वर्षमें एक बार, द्वापरमें बारह वर्षमें एक बार, त्रेतायुगमें सात वर्षमें एक बार तथा कलिकालमें प्रतिवर्ष मनाया जाता है। 'अम्बुवाची' शब्दका शाब्दिक अर्थ है—अम्बु अर्थात् जल और वाची अर्थात् कहना या बोलना। यह वर्षाके आगमनका द्योतक है। पौराणिक विश्वासके अनुसार स्त्री धरतीके समान होती है। स्त्रीकी तुलना क्षेत्र या खेतसे की जाती है। अम्बुवाचीका पालन एक पुरातन कृषिभित्तिक विश्वासपर आधारित है। बोडो समाज इसे 'आमथिसुवा' कहता है और निचले असममें इसे 'आमेली' कहा जाता है। कृषक-समाज शास्त्रीय और लौकिक रीतिसे पृथ्वीकी उर्वरा-शक्तिकी उपासना करता है। एक सप्ताहतक चलनेवाले इस लोक-पर्वमें कुमारी लड़कियाँ, सुहागिनें तथा अविवाहित पुरुष व्रत करते हैं। ज्येष्ठमासके अन्तिम तीन दिन और आषाढ़के प्रथम तीन दिनोंतक यह पर्व चलता है।

अम्बुवाची लोकपर्वके प्रथम दिन लोग जलाशयोंमें स्नानकर वहाँकी मिट्टी लाकर पीढ़ामें फैलाकर बीज बोते हैं। यह पीढ़ा भण्डारघरमें रख दिया जाता है। सातवें दिन यानी आषाढ़ महीनेके तीसरे दिन इसे बाहर निकाला जाता है। बीजोंके अंकुरणको देखकर पैदावारकी भविष्यवाणी की जाती है। इस समय मन्दिरोंके द्वार बन्द कर दिये जाते हैं और पूजा-पाठ नहीं किया जाता। किसान हल नहीं चलाते, मिट्टी नहीं खोदी जाती तथा पेड़-पौधे काटना वर्जित होता है। दाढ़ी-बाल बनाना अशुभ माना जाता है। विवाह आदि मांगलिक कार्य नहीं किये जाते। खरीद-फरोख्त न करनी पड़े, इसलिये साग-

अम्बुवाची निवृत्तिके दिन घरोंकी सफाई की जाती है। सम्पूर्ण सृष्टि पृथ्वीकी सन्तान है, इसी मान्यताके चलते अम्बुवाचीका माहात्म्य कृषक-समाजमें विशेष लोक-पर्वके रूपमें ख्यात है।

कामरूपमें स्थित कामाख्यामन्दिरमें देवीको बाला, कामा और उग्राके रूपमें पूजा जाता है। देवीभागवतके अनुसार कामाख्या योनिमण्डलमें त्रिपुरभैरवीका निवास है। विश्वके सभी तन्त्रसाधकों एवं सिद्ध लोगोंके लिये अम्बुवाची एक वरदान है। कामाख्यातन्त्रके अनुसार **'योनिमात्रशरीरा या कुञ्जवासिनी कामदा। रजस्वला महातेजा कामाक्षी ध्यायतां सदा॥'** महाभैरवीका यह क्षेत्र सर्वोच्च कौमारी-तीर्थ भी माना जाता है। यहाँ कौमारी-अनुष्ठानका विशेष महत्त्व है। आद्याकी प्रतीक कौमारियोंमें किसी कुल एवं वर्णका विभेद नहीं होता। लोकविश्वास है कि आद्या कौमारीरूपमें कामरूपमें विराजमान हैं। वर्ण-जातिका भेद करनेवाले साधककी शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। कामरूपका लोक-जीवन कश्मीरतक अपनी छाप छोड़ता था; क्योंकि महाभारतके प्रसिद्ध वीर शैलाधिपति भगदत्तके साम्राज्यके अन्तर्गत आधुनिक असमसहित उत्तरांचलकी समस्त पहाड़ी भूमि थी। कश्मीरके साथ कामरूप राज्यके जो वैवाहिक सम्बन्ध थे, उनसे भी लोकजीवन सीमाओंकी बाड़ नहीं मानता था।

बाणासुर, नरकासुर, घटोत्कच आदि अनेक पौराणिक महाप्रतापी असुर अथवा किरातराज यहीं हुए। श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणी फिर उषा, चित्रलेखा, हिडिम्बा, चित्रांगद आदि महिषी मातृशक्तियाँ कामरूप की मानी जाती हैं, जिनके आगमनसे पूर्वोत्तर भारतका दैवीय लोकजीवन देशके मैदानी भागोंमें प्रसारित हुआ। वस्तुतः पृथ्वीके अन्न धारणका लोकपर्व अम्बुवाची कृषिजीवनमें कामरूपमें तो दिखायी देता ही है, मृगशिरा-नक्षत्रमें जानेके पश्चात् पहले तीन दिन पृथ्वीकी जुताई आदि न करनेका विधान शेष भारतमें भी देखा जा सकता है, जो कि इस पौराणिक लोकपर्वकी विशाल व्यापकताको सिद्ध करता है, रूप अलग हो सकता है। अम्बुवाचीसे जुड़ा एक अन्य उत्सव है 'देउधा'। इसका अर्थ है देवताकी कृपाका पात्र। पौषमासके कृष्णपक्षकी द्वितीया, तृतीयाको पुष्यनक्षत्रमें पुष्पाभिषेक उत्सव मनाया जाता है, जिसमें कामेश्वरकी चंचला मूर्तिको कामेश्वर-मन्दिरमें अधिवासन किया जाता है। दूसरे दिन कामेश्वर-मन्दिरसे कामेश्वरकी मूर्ति ढाक, ढोल, वाद्य-यन्त्रोंकी ध्वनिके साथ लायी जाती है एवं भगवतीके पंचरत्न मन्दिरमें दोनों मूर्तियोंका शुभ परिणय-समारोह, पूजा-यज्ञादिके साथ हरगौरी विवाह-महोत्सव आयोजित किया जाता है। मान्यता है कि अम्बुवाची लोकोत्सवको मनानेवाले जनमानसकी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

भारतके बारह प्रधान देवी-विग्रह और उनके स्थान

काञ्चीपुरे तु कामाक्षी मलये भ्रामरी तथा। केरले तु कुमारी सा अम्बाऽऽनर्तेषु संस्थिता॥
करवीरे महालक्ष्मीः कालिका मालवेषु सा। प्रयागे ललिता देवी विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी॥
वाराणस्यां विशालाक्षी गयायां मङ्गलावती। बङ्गेषु सुन्दरी देवी नेपाले गुह्यकेश्वरी॥
इति द्वादशरूपेण संस्थिता भारते शिवा। एतासां दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
अशक्तो दर्शने नित्यं स्मरेत् प्रातः समाहितः। तथाप्युपासकः सर्वैरपराधैर्विमुच्यते॥

जगज्जननी भगवती महाशक्ति कांचीपुरमें कामाक्षीरूपसे, मलयगिरिमें भ्रामरी (भ्रमराम्बा) नामसे, केरल (मलाबार)-में कुमारी (कन्याकुमारी), आनर्त (गुजरात)-में अम्बा, करवीर (कोल्हापुर)-में महालक्ष्मी, मालवा (उज्जैन)-में कालिका, प्रयागमें ललिता (अलोपी) तथा विन्ध्यगिरिमें विन्ध्यवासिनीरूपसे प्रतिष्ठित हैं। वे वाराणसीमें विशालाक्षी, गयामें मंगलवती, बंगालमें सुन्दरी और नेपालमें गुह्यकेश्वरी कही जाती हैं। मंगलमयी पराम्बा पार्वती इन बारह रूपोंसे भारतमें स्थित हैं, इन विग्रहोंके दर्शनसे ही मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है। दर्शनमें अशक्त प्राणी सावधान चित्तसे प्रतिदिन प्रातःकालमें इनका स्मरण करे। ऐसा करनेवाला उपासक भी सारे अपराधोंसे मुक्त हो जाता है। [**त्रिपुरारहस्य**]

गो-चिन्तन—

सन्त जाम्भोजीकी 'सबद-वाणी' में गो-चिन्तन

(श्रीबद्रीनारायणजी विश्नोई)

सन्त-साहित्यमें जाम्भोजीकी सबद-वाणीका विशेष स्थान है। विश्नोई-सम्प्रदायके प्रवर्तक सन्त जाम्भोजी महाराज (१४५१—१६३६ ई०)-की सबद-वाणीके वैचारिक चिन्तनमें समाज-सुधार और मानव-कल्याणके साथ-साथ प्रकृति और गो-संरक्षणसे जुड़ा दूरगामी दृष्टिकोण भी निहित है। उनकी सबद-वाणी साधकको आत्मानुभूति और आत्म-साक्षात्कार करवाती है। सन्त जाम्भोजीने १४८५ ई० में विश्नोई-सम्प्रदायकी स्थापना की। उन्होंने अपने अनुयायियोंको मानव-जीवनके आचार-विचारसे सम्बद्ध २९ नियम बताये, जो कि व्यक्तिके दैनिक जीवन, रहन-सहन, आहार-पान, भजन-सन्ध्याकी सात्त्विकता, वैचारिक पवित्रता तथा प्रकृति और पर्यावरण-संरक्षणका प्रतिपादन करते हैं। चूँकि उस समय मुगलोंका शासन था, अस्तु, गोवंशपर अत्याचार हो रहे थे। ऐसे समयमें गोवंश-संवर्धन और संरक्षणके प्रति जनताको सचेत करना बहुत जरूरी था। इसलिये सन्त जाम्भोजीने अपनी सबद-वाणीमें गो-चिन्तनको पर्याप्त स्थान दिया है। उनके द्वारा प्रवर्तित २९ नियमोंमें नियम संख्या २४ इसी सम्बन्धमें है, जो कि इस प्रकार है—

'बैल बधिया न करावै।' (नियम सं० २४)

अर्थात् बैलोंका बन्ध्याकरण नहीं करवायें।

वस्तुतः सन्त जाम्भोजीका मानव-जातिको सन्देश है कि बैलोंका बन्ध्याकरण पाप है। इस नियमद्वारा सन्त जाम्भोजीने बैलोंकी वंश-वृद्धि, स्वास्थ्य और संरक्षणपर जोर दिया है। स्वयं सन्त जाम्भोजीने २७ वर्षोंतक गायें चरायीं और इस दौरान उन्होंने विश्व-मानवताको गोसेवा और पर्यावरण-संरक्षणके महत्त्वका उपदेश दिया। उन्होंने अपनी सबद-वाणीमें लिखा है—

'जा दिन तेरे होम न जाप न तप न क्रिया जाण के भागी कपिला गाई॥' (सबद सं० ७)

सन्त जाम्भोजी जीवात्माको सावधान करते हैं कि जबसे तूने यज्ञ, जप, तपादि अध्यात्म-कर्म नहीं किये। यह जानकार कपिला (भूरी) गाय भी तुम्हें छोड़कर भाग गयी। अर्थात् जिस घरमें यज्ञ, श्रीहरि-संकीर्तन आदि नहीं होते हैं, वहाँपर गौएँ नहीं रहना चाहतीं।

सन्त जाम्भोजीने गौओंके प्रति किसी भी तरहकी यातनासे हमें सावधान किया है। वे अपनी सबद-वाणीद्वारा जीवात्मासे प्रश्न करते हैं—

कै तैं सुवा गाय का बच्छ बिछोड्या।
कै तैं चरती पिवती गऊ बिडारी॥

(सबद सं० ६१)

अर्थात् क्या तूने प्रसूता गायसे दूध पीते बछड़ेको बिछोड़ा है? क्या तूने चारा चरती और पानी पीती गायको डराया है? सन्त जाम्भोजीने अपनी सबद-वाणीमें ऐसे कुकृत्योंको गो-दोष और पाप कहा है। उनका सन्देश है कि ऐसे गो-अत्याचारीकी कभी भी सद्गति नहीं होती। आज भारतमें गो-वंश (गाय और बैल)-की संख्या करोड़ोंमें है।

२०वीं पशु-गणना (२०१९)-के अनुसार देशमें १९ करोड़ २४ लाखसे भी अधिक गोवंश हैं, जो कि १९वीं पशु-गणना (२०१२) १९ करोड़ ०९ लाख की तुलनामें ०.८३ प्रतिशत ज्यादा है।

गो-वंशमें संख्यात्मक वृद्धि अच्छी बात है, लेकिन गौओंकी उपेक्षा और इनकी गिरती दशा चिन्तनीय है।

मानवकी स्वार्थवृत्तिने गौओंको भी आवारा पशुकी तरह निराश्रय मरनेके लिये छोड़ दिया। आज घर और गोशाला सभी स्थानोंपर गौओंकी बेहतर देखभाल, संरक्षण और उनके प्रति गहरी संवेदनशीलताकी जरूरत है। गो-हत्यापर सख्त प्रतिबन्ध, पशु-क्रूरतासे जुड़े विभिन्न कानूनोंकी दृढ़ पालना और गोको 'माता' के राष्ट्रीय दर्जेके लिये गोभक्तोंकी माँग है।

वर्तमानके ऐसे वातावरणमें सन्त जाम्भोजी महाराजके गो-चिन्तन, संस्कृति और इनके धार्मिक महत्त्वको समझनेके लिये ऐसे साहित्यको स्कूली पाठ्यक्रमोंमें यथोचित स्थान देनेकी बेहद जरूरत है। इससे आजकी युवा और अनेक भावी पीढ़ियाँ गो-सेवा और संस्कृतिके मूल्योंको पढ़कर और समझकर उन्हें आत्मसात् करेंगी, जिससे गो-संरक्षणके अभियानोंको ज्यादा गति और मजबूती मिलेगी।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२३, सूर्य-उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, चैत्र-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ६।५७ बजेतक	बुध	उ०फा० रात्रिमें ३।४३ बजेतक	८ मार्च	**कन्याराशि** दिनमें ८। २७ बजेसे, **सर्वत्र होली (वसन्तोत्सव)।**
द्वितीया ,, ७।५० बजेतक	गुरु	हस्त रात्रिशेष ४।५८ बजेतक	९ ,,	× × × × ×
तृतीया ,, ८।९ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, ५।४२ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** प्रात: ७।५९ बजेसे रात्रिमें ८।९ बजेतक, **तुलाराशि** सायं ५।२० बजेसे।
चतुर्थी ,, ७।५७ बजेतक	शनि	स्वाती ,, ५।५८ बजेतक	११ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ३५ बजे।
पंचमी ,, ७।१६ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ५।४३ बजेतक	१२ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ११। ४७ बजेसे।
षष्ठी सायं ६।८ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, ५।४ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** सायं ६।८ बजेसे रात्रिशेष ५। २३ बजेतक, **मूल** रात्रिशेष ५।४ बजेसे।
सप्तमी ,, ४।३८ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा रात्रिमें ४।५ बजेतक	१४ ,,	**धनुराशि** रात्रिशेष ४।५ बजेसे।
अष्टमी दिनमें २।४७ बजेतक	बुध	मूल ,, २।४८ बजेतक	१५ ,,	**मीन संक्रान्ति** दिनमें ८।५९ बजे, **वसन्त-ऋतु प्रारम्भ, खरमासारम्भ, मूल समाप्त** रात्रिमें २। ४८ बजे।
नवमी ,, १२।४० बजेतक	गुरु	पू०षा० ,, १।१८ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। ३२ बजेसे।
दशमी ,, १०।२३ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, ११।४१ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२३ बजेतक, **मकरराशि** प्रात: ६।५३ बजे, **पापमोचनी एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
एकादशी प्रात: ८।० बजेतक	शनि	श्रवण ,, ९।५९ बजेतक	१८ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव), उ०भा० का सूर्य** सायं ५। ११ बजे।
त्रयोदशी रात्रिमें ३।१७ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ८।२२ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।१७ बजेसे, **कुम्भराशि** दिनमें ९।१० बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ९। १० बजे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १।४ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, ६।५० बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें २।१० बजेतक, **सायन मेषका सूर्य** रात्रिशेष ५।१९ बजे।
अमावस्या ,, ११।४ बजेतक	मंगल	पू०भा० सायं ५।३१ बजेतक	२१ ,,	**मीनराशि** दिनमें ११।५० बजेसे, **भौमवती अमावस्या।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।२४ बजेतक	बुध	उ०भा० सायं ४।२८ बजेतक	२२ मार्च	**नवसंवत्सर (नल) २०८० प्रारम्भ, मूल** सायं ४। २८ बजेसे।
द्वितीया ,, ८। ३ बजेतक	गुरु	रेवती दिनमें ३।४५ बजेतक	२३ ,,	**मेषराशि** दिनमें ३। ४५ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें ३। ४५ बजे।
तृतीया ,, ७।८ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, ३। २७ बजेतक	२४ ,,	**मत्स्यावतार, गणगौर, मूल, समाप्त** दिनमें ३। २७ बजे।
चतुर्थी ,, ६।४३ बजेतक	शनि	भरणी ,, ३।३६ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** प्रात: ६। ५५ बजेसे रात्रिमें ६। ४३ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ९। ४६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ६।४८ बजेतक	रवि	कृत्तिका सायं ४।१७ बजेतक	२६ ,,	× × × × ×
षष्ठी ,, ७। २५ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, ५। २६ बजेतक	२७ ,,	**श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, ८। २९ बजेतक	मंगल	मृगशिरा रात्रिमें ७। ३ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। २९ बजेसे, **मिथुनराशि** प्रात: ६।१४ बजेसे, **महानिशापूजा।**
अष्टमी ,, १०।१ बजेतक	बुध	आर्द्रा ,, ९।७ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १४ बजेतक, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, ११।५३ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु ,, ११। ३१ बजेतक	३० ,,	**कर्कराशि** सायं ४। ५५ बजेसे, **श्रीदुर्गानवमीव्रत, श्रीरामनवमीव्रत।**
दशमी ,, १।५७ बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, २।५ बजेतक	३१ ,,	**रेवतीका सूर्य** रात्रिमें ३। ४३ बजे।
एकादशी रात्रिशेष ४।३ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ४।४२ बजेतक	१ अप्रैल	**भद्रा** दिनमें ३।० बजेसे रात्रिशेष ४।३ बजेतक, **एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
द्वादशी अहोरात्र	रवि	मघा अहोरात्र	२ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
द्वादशी प्रात: ६।१ बजेतक	सोम	मघा प्रात: ७।१० बजेतक	३ ,,	**सोमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी प्रात: ७।४१ बजेतक	मंगल	पू०फा० दिनमें ९।२२ बजेतक	४ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ३। ५० बजेसे, **श्रीमहावीर-जयन्ती**
चतुर्दशी दिनमें ८।५५ बजेतक	बुध	उ०फा० दिनमें ११।१० बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ५५ बजेसे रात्रिमें ९। २० बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ९।४४ बजेतक	गुरु	हस्त दिनमें १२। ३२ बजेतक	६ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १२। ५८ बजेसे, **पूर्णिमा, श्रीहनुमज्जयन्ती,**

सुभाषित-त्रिवेणी

पण्डितके लक्षण

[The attributes of a Pandit]

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान, उद्योग, दुःख सहनेकी शक्ति और धर्ममें स्थिरता—ये गुण जिस मनुष्यको पुरुषार्थसे च्युत नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है।

He alone is entitled to be named Pandita who knows his worth, is industrious, has the capacity to suffer and who does not deviate from his duty under any circumstances.

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्॥

जो अच्छे कर्मोंका सवेन करता और बुरे कर्मोंसे दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके वे सद्गुण पण्डित होनेके लक्षण हैं।

A Pandita always acts admirably and shuns evil activity. He believes in God and worships with devotion.

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा अपनेको पूज्य समझना—ये भाव जिसको पुरुषार्थसे भ्रष्ट नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है।

A Pandita is not diverted from the path of his duty, his Dharma, by the emotions of anger, joy, pride, shame, obstinacy and a false sense of superiority.

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

दूसरे लोग जिसके कर्तव्य, सलाह और पहलेसे किये हुए विचारको नहीं जानते, बल्कि काम पूरा होनेपर ही जानते हैं, वही पण्डित कहलाता है।

We call him a Pandita whose activities are not known to others when that is considered or advised but only when that succeeds.

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥

सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता—ये जिसके कार्यमें विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है।

A Pandita's actions are not interrupted by summer or winter, by heat or cold, neither by fear of consequences nor by lust. He is not swayed from his path either by riches or poverty.

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते॥

जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म और अर्थका ही अनुसरण करती है और जो भोगको छोड़कर पुरुषार्थका ही वरण करता है, वही पण्डित कहलाता है।

He alone is entitled to be called a Pandita whose worldly wisdom partakes of the twin qualities of Dharma and Artha, and one who forsaking the path of sensual indulgence takes the road of living like an upright human being.

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः॥

विवेकपूर्ण बुद्धिवाले पुरुष शक्तिके अनुसार काम करनेकी इच्छा रखते हैं और करते भी हैं तथा किसी वस्तुको तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना नहीं करते।

The learned men, deep in their wisdom, know their limitations. They aspire to achieve what is possible within their power and work for the same. For them no effort, however small, is below their dignity. [विदुर-नीति १।३०—३५]

कृपानुभूति

माता भगवतीकी कृपा

मैं पौड़ी-गढ़वालके एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-परिवारका एक सदस्य रहा हूँ। धार्मिक संस्कार मुझे अपने परिवारसे विरासतमें मिले हैं। बचपनसे मेरी पूजा-पाठमें आस्था रही है।

आज मेरी वय ८२ साल पार कर चुकी है। मैं नयी दिल्लीमें महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेडमें बतौर सीनियर सुपरवाइजर पदसे सन् २००० में रिटायर हो चुका हूँ। यह सच्ची घटना २००७ के बरसातके दिनोंकी है—

मेरी चार बेटियोंमेंसे एक कविता इटली अपने पति सुशीलके साथ थी। सुशील वहाँ संयुक्त राष्ट्र संघमें इंजीनियरके रूपमें कार्यरत थे। उस समय वे इटलीके दक्षिणमें समुद्र किनारे स्थित ब्रिंडेसी नामक नगरमें रहते थे। कविता काफी समयसे मुझे अपने पास इटली घुमानेकी जिद कर रही थी। हालाँकि विदेश घूमनेकी हमारी भी तीव्र लालसा थी, पर बढ़ती वयके कारण हम झिझक रहे थे।

जब हमें मालूम चला कि बेटी शिशुको जन्म देनेवाली है और वहाँ उसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं है, तो हमने हामी भरी। वह बहुत खुश हुई। जवाबमें उसने मेरी तथा पत्नीकी हवाई जहाजकी दो टिकटें भिजवा दीं। इसके साथ ही हमारा कौतूहल बढ़ता चला गया। यह हमारी पहली हवाई यात्रा थी। वैसे सच तो यह था कि इससे पहले मैंने रेलमें भी कभी सफर नहीं किया था। दिल्लीसे हमें कभी पौड़ी-गढ़वाल घर जाना होता तो अपनी कार अथवा बस होती थी। बहरहाल, अब हमें ढेर-सारे निर्देश मिलने शुरू हो गये कि हमें किस तरह तैयारी करनी है। क्या-क्या सामान लेने हैं? हवाई अड्डे कैसे पहुँचना है, इत्यादि।

हमारी फ्लाइट भोरकी थी। मेरे बेटेने हमें आधी रातमें ही इन्दिरा गाँधी इण्टरनेशनल हवाई अड्डा पहुँचा दिया। बाहरी दरवाजेसे जब बेटेको अन्दर नहीं आने दिया गया, तो हम अकेले पड़ गये। घबराहट होने लगी थी। अन्दरसे हवाई अड्डा-परिसर खूब बड़ा, साफ-रहे थे। भीड़ थी। हमारी घबराहट और बढ़ गयी। पाँच मिनट बाद ही हम आश्वस्त हो सके, जब हमारे लिये दो ह्वीलचेयर आयी।

हालाँकि हमें चलनेमें कोई दिक्कत नहीं थी, पर बेटीने टिकट बुक करते समय ही हम दोनोंके लिये ह्वीलचेयर सुविधा ले ली थी। इससे हमें बड़ी सुविधा मिली, हमारे अटेण्डेण्टने हमारी पूरी मदद की। हवाई अड्डेकी आकर्षक रोशनी और उसकी भव्यता देखनेमें हम व्यस्त हो गये, बल्कि यूँ कहें कि इतने मशगूल हो गये कि चार घण्टे कब बीत गये, मालूम नहीं चला।

एयर इण्डियाके बोइंग विमानमें बिठाया गया तो हमें बहुत डर लग रहा था। थोड़ी देरमें एक एअर होस्टेसने आकर हमें सीट-बेल्ट बाँधने और आक्सीजन लेनेका तरीका समझाया।

उसने हमसे पूछा कि हम क्या खाना या पीना पसन्द करेंगे, लेकिन हमने कुछ खाने-पीनेसे मना कर दिया। भूख तो लगी थी, किंतु उससे बड़ी परेशानी डरको लेकर थी। जब हवाई जहाजने रन-वेपर भागना शुरू किया, तो मेरी पत्नीने डरकर मेरा हाथ पकड़ लिया। हमारा डर उस समय जाकर कम हुआ, जब जहाज हवामें तैरने लगा। खिड़कीसे दिल्ली महानगरका विहंगम दृश्य देखकर हमें बहुत खुशी हुई। रातभर जगनेके कारण आधे घण्टे बाद हमें नींद आ गयी।

लगभग १३ घण्टेके सफरके बाद जब हम रोमके हवाई अड्डेपर उतरे, तो उसकी आलीशान और चकाचौंधसे भरपूर शीशेवाली इमारतने मानो हमें सम्मोहित कर दिया। दिल्लीकी तुलनामें रोमका वह हवाई अड्डा बहुत बड़ा और बेहद आलीशान था। वहाँ हमें हवाई जहाजसे ह्वीलचेयरके माध्यमसे नीचे लाया गया।

यहींसे हमारी परेशानियाँ शुरू हुईं। हमारी अटेण्डेण्ट दो अश्वेत महिलाएँ थीं, जिन्हें न तो हिन्दी आती थी और न ही अंग्रेजी। और जो भाषा उन्हें आती थी, वह

हमारी बात सुननेवाला नहीं था। हर कोई भाग रहा था। तरह-तरहके पहनावा पहने लोग। सफेद-काले, छोटे-बड़े हर तरहके लोग, लेकिन सभी अपने काममें मशगूल। दोनों अटेण्डेण्ट भी ह्वीलचेयर छोड़कर गायब हो गयीं। हम बुरी तरहसे परेशान हो गये।

पौन घण्टेकी परेशानीके बाद एक अधेड़ अंग्रेजने आकर मेरा टिकट देखा और बताया कि मेरी कनेक्टिंग फ्लाइट रोममें उतरनेके १५ मिनट बाद ही थी, जो हमारा इंतजार करनेके बाद पहले ही जा चुकी थी। यह बताकर वह चला गया।

हम जिस वेटिंग एरियामें थे, वहाँपर उस समय दूर-दूरतक कोई व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ रहा था। एकाध दिखे भी, लेकिन भाषा-सम्बन्धी विषमताके कारण बात नहीं बनी। गजबकी परेशानीके बीच हम बिलकुल असहाय थे। मेरी पत्नी तो रोने लगी। हताशा तो मुझमें भी थी, किंतु मैंने उसे ढाँढ़स बँधाया।

इस गहरे अन्धकारकी स्थितिमें मुझे सबकुछ डूबता नजर आया। मेरा दिल बैठा जा रहा था। हाय, अब क्या होगा? मैंने अपनी बेटीको मोबाइलसे फोन लगाया, एक बार, दो बार, बार-बार। नहीं लगा। मेरी पत्नी मेरा हाथ थामे रोये जा रही थी।

तभी मुझे माँ भगवती याद आयीं। मैंने ध्यान लगाया और दुर्गा-चालीसाका पाठ करने लगा—***'नमो नमो दुर्गे सुख करनी, नमो नमो अंबे दुख हरनी'''*** मैं पाठमें इतना तल्लीन हो गया कि आसपासके वातावरणका ध्यान ही नहीं रहा। मेरी तन्द्रा उस समय टूटी, जब किसीने मेरे कन्धेपर हाथ रखा। वे दो नौजवान लड़के थे। उन्होंने अंग्रेजीमें हमारी समस्याके बारेमें पूछा तो मेरी भी आँखोंसे आँसू निकल पड़े। उन्होंने हमें ढाँढ़स बँधाया, पानी पिलाया और धैर्य रखनेको कहा। आगे मालूम चला कि उन्हें हिन्दी बोलनी भी आती है। उनमेंसे एक आगे पूछताछके लिये चला गया, दूसरा तसल्लीसे हमारी बात सुनता रहा। लगभग दस मिनटके बाद पहला लड़का आया और बताया कि हमें एक दूसरी कनेक्टिंग फ्लाइट आधे घंटेमें मिल जायगी। फिर वह हमारा टिकट ले जाकर जरूरी बदलाव करा लाया। अधिकारियोंने इस बदलावके लिये मुझसे कोई अतिरिक्त चार्ज नहीं माँगा। लड़कोंने हमें अपने पाससे एक यूरोका सिक्का दिया और टेलीफोन बूथपर ले जाकर मेरी बेटीसे बात करवायी। हमने अपनी बेटीको सारी कहानी बतायी और बताया कि अब हम दूसरी फ्लाइटसे आ रहे हैं। बेटीसे बात करनेके बाद ही हमारी जानमें जान आयी। दोनों हमारी ह्वीलचेयर धकेलते हुए उस प्लेटफार्मपर ले आये, जहाँसे दस मिनट बाद दो लोग हमें हवाई जहाजमें पहुँचानेवाले थे। उन्होंने हमें सुनिश्चित किया और उन दो अटेण्डेण्टको निर्देश दिया कि वे हमें सही तरीकेसे जहाजमें बिठा दें।

मैंने दोनोंको प्रणाम किया। वे दोनों हिन्दुस्तानी लड़के थे। उनके मोबाइल नम्बर नोट किये। हम प्लेटफार्मपर खड़े थे। तभी मेरे हाथसे पानीकी बोतल सरककर नीचे गिरी। मैंने मुड़कर अटेण्डेण्टसे बोतल उठाकर देनेको कहा। वापस बोतल ले करके मुड़े ही थे कि यह क्या हुआ? दोनों लड़के अचानक गायब हो चुके थे। लगभग ५० मीटरका सामने रास्ता था, किंतु दोनों बच्चोंका कहीं कोई पता-ठिकाना नहीं। मैंने श्रीमतीजीसे भी पूछा, लेकिन वे भी कुछ बता न सकीं। उनके इस तरह बिना कुछ कहे गायब होनेसे हम विस्मयमें पड़ गये।

हवाई जहाजमें चढ़नेके लिये आगे बढ़नेतक हम उनकी राह बार-बार देखते रहे, लेकिन हमें निराशा ही हाथ लगी। तीन घण्टे बाद हम आरामसे अपनी बेटीके पास ब्रिंडेसी पहुँच गये। मलाल था बस यही कि हम उन्हें धन्यवाद भी नहीं कह सके, जिसका हमें आजीवन पछतावा रहेगा। आजीवन इसलिये कि हिन्दुस्तान लौटनेपर मैं उन्हें तीन माहतक फोन लगाता रहा, किंतु कभी फोन नहीं लगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि वे दोनों लड़के कोई और नहीं बल्कि देवी दुर्गाके भेजे दो देवदूत थे। माँ भगवतीकी कृपा थी। उनके आशीर्वादसे ही हम सकुशल अपनी यात्रा पूरी कर सके।—[illegible]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

शिक्षकोंकी सहृदयता

यह बात वर्ष १९८७ की है, जब मेरा पदस्थापन बतौर निरीक्षक डाकघर जोधपुर जिलेके पीपाड शहरमें था। उन दिनों मेरी मँझली पुत्री उर्मिलाकी माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थानकी सेकण्डरी परीक्षाएँ चल रही थीं। उस दिन मैं राजकीय कार्यसे बाहर दौरेपर था और पुत्रीकी सुबह सात बजे संस्कृतकी परीक्षा होनी थी, परंतु वह बिना टाइम-टेबल देखे, अन्य पूर्व प्रश्न-पत्रोंकी भाँति ही परीक्षा-समय दोपहर दो बजे समझकर घरपर निश्चिन्त बैठी थी। उधर परीक्षा-केन्द्रपर परीक्षा प्रारम्भ होते देख उसकी एक सहपाठी छात्राने पर्यवेक्षकका ध्यान उर्मिलाकी अनपेक्षित अनुपस्थितिकी ओर दिलाया। सहपाठी छात्राको मेरे निवासस्थानकी जानकारी नहीं थी, परंतु उसने पर्यवेक्षकको मात्र इतनी जानकारी दी कि उसके पिताजी डाक-विभागमें कार्य करते हैं। तत्काल परीक्षा-केन्द्रसे एक शिक्षक बन्धु डाकघरसे जानकारी प्राप्तकर मेरे घर पहुँचे। जब पुत्रीको अचानक परीक्षाकी जानकारी हुई, तो वह भी घबड़ा गयी, परंतु सहृदय शिक्षकने मेरी पुत्रीको हिम्मत बँधायी और स्कूटरपर साथ ले जाकर परीक्षा दिलवायी। उन्होंने मेरी पुत्रीके अध्ययनका एक वर्ष व्यर्थ होनेसे बचा लिया। मैं आज भी उस परीक्षा-केन्द्रके शिक्षकोंकी सहृदयताके बारेमें सोचता हूँ, तो उनके प्रति मेरा हृदय आदरसे भर जाता है।—**पुखराज शर्मा**

(२)

ईमानदारी अभी जिन्दा है

मैं एक सेवानिवृत्त बैंक अधिकारी हूँ, हरिपुरकलाँ, देहरादूनमें रहता हूँ। मुझे सेवानिवृत्त हुए १२ वर्षसे अधिक हो चुका है। मैं अपने साथ हुई अभी कुछ दिन पूर्वकी घटना जनमानसके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यह घटना दिनांक १९ अप्रैल २०२२ की है, जब मैं अपने घरके लिये पानीका कनेक्शन लेनेके उद्देश्यसे जल निगम कार्यालय, श्यामपुर गया। वहाँपर मुझे २५ रुपये जमा करने थे, वह मैंने जमा कर दिये तथा रसीद रख लिया और घर वापस आ गया। अगले दिन अर्थात् दिनांक २० अप्रैल २०२२ को जब मैंने पैंटकी जेब देखी, तो पर्स उसमें नहीं था। मैंने सोच लिया कि शायद रास्तेमें कहीं गिर गया होगा।

अब चूँकि मैंने रसीद भी पर्समें ही रखी थी, इसलिए मुझे पुन: जल निगम कार्यालय श्यामपुर जाना पड़ा। वहाँ मैंने सबके सामने कहा कि कल मेरा पर्स कहीं खो गया, उसीमें कल जो रसीद आपने दी थी, वह भी खो गयी। कृपया डुप्लीकेट रसीद देनेका कष्ट करें तो सम्बन्धित महिलाने डुप्लीकेट रसीद दे दी और मैं वापस घर आ गया।

सायंकाल मेरे पास श्रीविक्रम सिंह नेगीजीका फोन आया कि 'आपका पर्स मुझे मिला था, परंतु उसमें कोई परिचयात्मक चिह्न न होनेके कारण मैं किसीसे सम्पर्क नहीं कर सका। आज मेरी पत्नीने बताया तो निश्चय हो गया कि यह पर्स आपका है। आप कभी भी आकर अपना पर्स ले सकते हैं।'

श्रीविक्रम सिंह नेगी तथा उनकी पत्नी दोनों ही जल निगममें कार्यरत हैं। मैं अगले दिन अर्थात् २१ अप्रैलको श्रीविक्रम सिंह नेगीजीके पास गया तो मेरे सुखद आश्चर्यकी सीमा ही न रही। सबसे पहले दम्पतीने मुझे प्रणाम किया तथा अपने ड्राइंग रूममें बैठाया और चाय पिलायी। तत्पश्चात् मेरा पर्स मुझे दिया, जिसमें लगभग सात हजार रुपये यथावत् रखे हुए थे तथा जल निगमकी रसीद भी रखी हुई थी। मैंने दम्पतीको धन्यवाद दिया तथा एक हजार रुपये इनाम देना चाहा, जिसे नेगीजीने हाथ जोड़कर लेनेसे मना कर दिया।

आज उनके जैसे ईमानदार व्यक्तियोंके कारण ही यह सृष्टि चल रही है। भगवान्‌से प्रार्थना है कि वे इस दम्पतीको सदैव सुखी रखें।—**आई० डी० त्रिवेदी**

(३)

एक मुट्ठी तिल

एक राजाके एकमात्र पुत्र था, उसका नाम ब्रह्मदत्त कुमार था। नगरमें प्रसिद्ध आचार्योंके रहते हुए भी उन

भेजते थे। ताकि उनका मान-मर्दन हो जाय। सरदी-गरमी सहनेकी सामर्थ्य आ जाय तथा लोक-व्यवहारके ज्ञाता हो जायँ। राजाने भी अपने सोलह सालके पुत्रको बुलाकर उसे एक जोड़ी जूता, पत्तोंका बना छाता और हजार कार्षापण (उन दिनोंकी मुद्रा) देकर भेजा। राजाने उससे कहा—'तात! तक्षशिला जाकर विद्या सीख आ।'

राजपुत्रने 'अच्छा' कह माता-पिताको प्रणामकर विदा लिया। चलते-चलते तक्षशिला पहुँचा। वहाँ आचार्यके पास पहुँचा। जब वह आचार्यके पास पहुँचा, उस समय आचार्य अपने शिष्योंको पाठ पढ़ाकर घरके दरवाजेपर टहल रहे थे। उसने अपने जूते उतारकर छाता इत्यादि सभी चीजें व्यवस्थितकर आचार्यको प्रणाम किया और उनके समक्ष खड़ा हो गया।

आचार्यने उसे थका हुआ जान उसका आतिथ्य करवाया। राजकुमार भोजन-विश्राम आदिसे निवृत्त होकर आचार्यके पास आया।

आचार्यने उससे पूछा—'तात! तुम कहाँसे आये हो?'

उसने उत्तर दिया—'गुरुजी! काशीसे।'

तुम किसके पुत्र हो?—'काशीके राजाका।'

तुम किसलिये मेरे पास आये हो?—'शिल्प सीखनेके लिये।'

आचार्य—गुरु-दक्षिणा लाये हो या धर्म-शिष्य* बनना चाहते हो?

उस राजपुत्रने 'आचार्य! मैं दक्षिणा लाया हूँ'—ऐसा कहते हुए उसने हजार सोनेके सिक्कोंसे भरी थैली आचार्यके चरणोंमें रख दी।

आचार्यके यहाँ जो धर्म-शिष्य थे, वे दिनभर आचार्यका सेवा-कार्य करके रात्रिमें शिल्प सीखा करते थे और जो दक्षिणा देनेवाले शिष्य थे, वे पुत्रकी भाँति आचार्यके घरमें रहकर केवल शिल्प सीखा करते थे।

आचार्यने योग्य नक्षत्रमें राजकुमारको विद्या सिखाना आरम्भ किया। शिल्प सीखता हुआ कुमार एक दिन आचार्यके साथ नहाने गया। रास्तेमें उसने एक बुढ़ियाको देखा, जो तिल जमीनपर फैलाकर उसे सुखा रही थी। कुमारने साफ-सुथरे तिल देख बिना किसीकी आज्ञाके एक मुट्ठी तिल उठाकर खा लिये। बुढ़ियाने सोचा 'यह तो बड़ा लोभी है!' फिर भी वह कुछ बोली नहीं।

अगले दिन कुमारने फिर वैसा ही किया। बुढ़ियाने तब भी कुछ न कहा। जब कुमारने तीसरे दिन भी वही व्यवहार किया, तब बुढ़िया हाथ उठाकर रोने लगी और कहने लगी—'ये आचार्य अपने शिष्योंद्वारा मुझे लुटव रहे हैं।'

आचार्यने पूछा—'माँ! ये आप क्या कह रही हैं!

आचार्यजी! आपका शिष्य तीन दिनोंसे बिन आज्ञा मेरे साफ-सुथरे तिल मुट्ठियोंमें लेकर खा लेता है आप ही बतायें, ये इस प्रकार तो मेरे सारे तिल नष्ट कर देगा।

आचार्यने बुढ़ियासे कहा—'माँ! तुम रोओ मत। मै तुम्हें इसकी कीमत चुकाता हूँ।'

परंतु बुढ़ियाने कहा—'आचार्य! मुझे इसकी कीमत नहीं चाहिये। मैं तो चाहती हूँ कि आप इसको ऐस दण्ड दें कि फिर ये कभी किसीके साथ ऐसा न करे।

'माँ! तुम चिन्ता न करो, मैं इसे दण्डित करता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने कुमारकी पीठपर तीन छड़ी मारी इसपर कुमार क्रोधित हो गया और उसने क्रोधभरी दृष्टिसे आचार्यकी ओर देखा। उसके इस प्रकारके व्यवहारसे आचार्य समझ गये कि कुमार इस समय क्रोधित हो गया है।

शिल्प-शिक्षा पूरी होनेके उपरान्त कुमार मनमे क्रोध धारण किये आचार्यसे विदा लेकर अपने घरको चला गया।

जब माता-पिताने उसके बनाये शिल्पको देख और अनुभव किया कि वह अब राज-काज सँभालनेके योग्य हो गया है, तो उन्होंने उसे राजा बना दिया।

उस राजकुमारने अपने अधिकारोंका प्रयोग करते हुए आचार्यसे अपने पिटनेका बदला लेनेकी सोची। ऐस सोच उसने आचार्यको बुलानेके लिये अपना दूत भेजा

आचार्य तो समझ गये कि राजकुमार क्रोधपूर्वक बदला लेनेके लिये मुझे अपने यहाँ बुला रहा है तत्पश्चात् उसने सोचा कि अभी राजकुमार अनुभवी नही है। वह मेरी बातोंको समझ न सकेगा—ऐसा सोचकर

आचार्यने उस समय राजकुमारके यहाँ जानेसे मना कर दिया और दूतसे बादमें आनेको कहा।

कुछ वर्षोंके बाद आचार्यने सोचा अब मुझे राजकुमारके यहाँ चलना चाहिये। और आचार्य स्वयं ही उसके पास गये।

राजद्वारपर पहुँचकर राजपालसे कहलवाया कि कृपया राजकुमारको सूचित कर दो कि तक्षशिलासे आचार्य आये हैं।

जब आचार्य राजकुमारके सामने पहुँचे तो ब्राह्मणको अपने पास आया देख राजकुमार क्रोधित हो गया। उसे वह घटना याद आ गयी।

उसने कहा—'क्यों, आपने एक मुट्ठी तिलके लिये सभीके सामने मुझे पीटा। मैं आजतक उसे भूला नहीं; क्योंकि मुझे आज भी उस चोटकी पीड़ा होती है। आज मैं आपको छोड़ूँगा नहीं।'

राजाकी बात सुनकर आचार्यने कहा—'राजन्! जब गुरु गलत बातके लिये शिष्यको दण्डित करता है, वह उसके भलेके लिये होता है। जरा विचार करिये, यदि मैं उस दिन आपको उस मुट्ठीभर तिलके लिये दण्डित न किया होता, तो आप ऐसे ही कर्म करते रहते और धीरे-धीरे आपकी चौरवृत्ति हो जाती। आप सेंध लगाना, घात लगाना इत्यादि ऐसे कर्म करने लगते और आप अपराधी हो जाते। सोचिये, यदि आप ऐसे ही करते रहते तो क्या आपको कोई राजा बनाता और यदि आप राजा न बनते उलटे अपराधी होते, तो आज आप किसी राजाके सामने होते और वह आपको दण्ड सुनाता। फिर इस प्रकार आपको धन-सम्मान और ये ऐश्वर्य कैसे प्राप्त होता!'

आज आपको यह सब मिल सका, वह अच्छी शिक्षाका ही परिणाम है; जो मेरे द्वारा आपको प्राप्त हुई है। आपको ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये।

यह सब सुनकर राजकुमारकी आँखें खुल गयीं। वह पश्चात्तापकी अग्निमें जलने लगा। उसने आचार्यसे क्षमा माँगी और उन्हें सम्मानित किया। फिर उसने आचार्यको अपने यहाँ पुरोहितके रूपमें नियुक्त कर दिया। यह घटना यह सन्देश देती है कि गुरुका डाट देना भी शिष्यके लिये कल्याणकारी होता है।

—राजकुमारी मोर

(४)

भारतेन्दुजीकी उदारता

बच्चू दुबे उर्फ प्रकाश मलिक भोजपुरी भाषाके लोकप्रिय गायक थे। इनका जन्म सन् १८४२ ई० में बिहार राज्यके शाहाबाद जिलेमें हुआ था। बचपनसे ही इनकी प्रवृत्ति संगीतकी ओर थी। वे स्वयं भोजपुरी भाषामें गीतकी रचन करते थे और गाते थे। आगे चलकर आप कालपी-निवासी उस्ताद अलीबख्श खाँके शिष्य बन गये। कठिन परिश्रम करके ऐसा तप किया कि उन्हें इलाकेका तानसेन कहा जाने लगा। साधारण गीतोंको भी इस ढंगसे गाते थे कि बड़े-बड़े गीतकार दंग हो जाते थे। वह दरबारी युग था। दुबेजी राज-दरबारमें गीत गाते और वहाँसे पुरस्कार पाकर लौटते थे। यही उनकी जीविकाका साधन था।

बच्चू दुबे एक बार काशी गये। वहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके दरबारमें संगीतका आयोजन था। हालाँकि उन दिनों भारतेन्दुजीकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी थी, फिर भी दोनों हाथोंसे लुटानेवाली आदत छूटी नही थी। दरबारमें अनेक गायकोंने अपनी संगीत-कलाक प्रदर्शन किया। तत्कालीन प्रसिद्ध बनारसी गायिकाएँ तौफी और मैनाने खूब वाहवाही लूटी। बादमें बच्चू दुबेको मौका मिला। उन्होंने एक ही गीतमें अनेक राग-रागिनियोंका संचारकर श्रोताओंको आश्चर्यमें डाल दिया। गीतके बोल थे—***'सैंया विदेश जनि जाहु रे।'*** उनके गीतसे प्रसन्न होकर भारतेन्दुजीने उन्हें एक बन्द लिफाफ दिया और कहा—'दुबेजी! इस लिफाफेमें एक भजन है, इसे आप अकेलेमें पढ़ लेना। अगर राग-तानमें कुछ गलती हो तो कल आकर बता देना।' रातमें उन्होंने अपने डेरेपर जाकर लिफाफा खोला, उसमें बड़ी राशि देखकर दुबेजी स्तब्ध रह गये। उन्होंने सोचा नोट भूलसे दिये गये हैं। दूसरे दिन उन्होंने नोटोंको वापस करन चाहा। भारतेन्दुजीने हँसते हुए कहा—'मैंने इसीलिये यह लिफाफा सबसे छुपाकर आपको दिया था कि यह राशि आपके गुणके योग्य नहीं है। सबके सामने इतना अल्प पुरस्कार देनेमें मुझे लज्जा आती।' —योगेशप्रताप सिंह

मनन करने योग्य

ब्रज-वृन्दावन-महिमा

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ परस्पर हँसते-हँसाते हुए तन्मय होकर बालवत् भोजन कर रहे थे। इसी अवसरमें उनके सारे बछड़े हरी घासके लोभसे दूर चले गये। बछड़ोंको दूर निकला देखकर ग्वाल-बालक डरे। तब श्रीकृष्णने उनसे कहा कि 'तुम डरो नहीं, बछड़ोंको मैं अभी लौटा लाता हूँ।' इतना कहकर आप भोजनका ग्रास हाथमें लिये ही अपने मित्रोंके बछड़ोंकी खोजमें चल दिये। ब्रह्माजी भगवान्की यह सारी लीला देख रहे थे, उन्हें मायाशिशु हरिकी लीला देखकर मोह हो गया। भगवान् श्रीहरिकी महिमा देखनेकी इच्छासे ब्रह्माजी पहले तो बछड़ोंको हर ले गये और अब श्रीकृष्णके चले जानेपर सारे ग्वालबालोंको उठाकर ले गये तथा सबको अचेतकर अपने लोकमें रख आये।

भगवान् लौटकर आये और ग्वालबालोंको न पाकर तथा यह सारी करतूत ब्रह्माजीकी समझकर ग्वालबालकों और बछड़ोंकी माता गोपियों और गौओंको सन्तुष्ट रखने तथा ब्रह्माको छकानेके लिये, विश्वरचयिता हरि स्वयं उतने ही बछड़े और बालक बन गये। जिस बछड़े और बालकका जैसा शरीर, जैसे हाथ-पैर, जैसी लकड़ी, जैसी सींगड़े, जैसी बाँसुरी, जैसा छींका, जैसे कपड़े और गहने थे तथा जैसा शील, गुण, नाम, आकृति, प्रकृति, अवस्था और आहार-विहार आदि था, सर्व-स्वरूप श्रीहरिने ठीक वैसे ही प्रकट होकर सारा विश्व 'विष्णुमय' है, इस बातको प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया। गोपियों और गौओंका स्नेह बालकों और बछड़ोंपर असीम रूपसे बढ़ गया। पहले व्रजवासियोंका श्रीकृष्णपर परम स्नेह था, परंतु अब वह अपने-अपने पुत्रोंपर अत्यधिक हो गया। छोटे बछड़े पास होनेपर भी गौएँ इन बड़े बछड़ोंको देखकर दौड़ छूटती थीं और उनके स्तनोंसे दूध बहने लगता था, बड़े-बूढ़े गोप अपने पुत्रोंको गले लगाकर बड़ी कठिनाईसे स्नेहकी उमंगको रोक सकते थे। इन सबका कारण यह था कि प्रेमार्णव श्रीकृष्ण ही सब कुछ बने हुए थे। सालभर यों ही बीत गया। श्रीबलदेवजीको व्रजवासी स्त्री, पुरुष और गौओंका अपने पुत्रोंपर स्नेह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ज्ञाननेत्रोंसे देखा तो उन्हें दिखलायी दिया कि बछड़े और उनकी रक्षा करनेवाले ग्वालबालक सभी श्रीकृष्णरूप हैं। बलदेवजीके पूछनेपर श्रीभगवान्ने उन्हें सारा भेद बतलाया। एक वर्ष बाद ब्रह्माजीने आकर देखा कि श्रीकृष्ण पूर्वकी भाँति उसी प्रकार अपने साथी ग्वालबालोंके साथ खेलते-खाते हुए बछड़े चरा रहे थे। उनको बड़ा अचरज हुआ, उन्होंने अपने लोकमें जाकर देखा कि बालक और बछड़े ज्यों-के-त्यों अचेत पड़े हैं। फिर आकर देखा तो यहाँ भी पूर्ववत् सब दिखलायी दिये। अब इन्हें यह भ्रम हो गया कि इन दोनोंमें वास्तवमें कौन-से बालक और बछड़े असली हैं और कौन-से नकली हैं! ब्रह्माजीकी बुद्धि चकरा गयी। इतनेमें उन्हें दिखायी दिया कि समस्त बछड़े और उनके रक्षक बालक श्रीकृष्णरूप हो रहे हैं। सभी श्यामसुन्दर पीताम्बर पहने, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये और किरीट, कुण्डल, हार, वनमाला आदि आभूषण तथा भक्तोंद्वारा अर्पित की हुई तुलसीकी मालाओंसे सुशोभित हैं। ब्रह्मासे लेकर एक तिनकेतक समस्त चराचर जीव मूर्तिमान् होकर भगवान्की सेवा-पूजा कर रहे हैं। यह सब चमत्कार देखकर ब्रह्माजी बेसुध होकर गिर पड़े। जब ब्रह्माजीको बाह्यज्ञान हुआ, तब उन्होंने देखा कि अच्युतकी विहारभूमि होनेके कारण श्रीवृन्दावन काम, क्रोध, लोभ आदि संसारके तापोंसे रहित रम्य और मनोहर वस्तुओंसे पूर्ण है। वहाँ सभी निर्वैर और सुखी हैं। अद्वितीय, परम, अनन्त, अगाधबोध ब्रह्म गोपबालकरूप नाट्यवेष धरकर हाथमें भोजनका ग्रास लिये पहलेकी भाँति इधर-उधर खोये हुए बछड़ों और बालकोंको खोज रहे हैं। यह देखते ही ब्रह्माजी कनक-दण्डके समान पृथ्वीपर गिरकर भगवान्के चरणकमलोंमें प्रणामकर आनन्दाश्रुओंकी धारासे उनके चरण धोने लगे। तदनन्तर उठकर भगवान्की स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—'इस भूमिपर, वृन्दारण्यमें और उसमें भी गोकुलमें जन्म होना परम सौभाग्यका विषय है, क्योंकि यहाँपर जन्म लेनेसे किसी-न-किसी आपके प्यारे गोकुलवासीकी चरणधूलि सिरपर पड़ ही जायगी। गोकुलवासी धन्य हैं, समस्त श्रुतियाँ निरन्तर जिनकी खोजमें लगी हुई हैं, वही आप इन व्रजवासियोंके जीवन हैं।' [श्रीमद्भागवतपुराण]

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

चित्रमय श्रीशिवमहापुराण (कोड 2318)[ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, सटीक, चार रंगोंमें, आर्ट पेपरपर] जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर **चित्रमय श्रीरामचरितमानस, चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता एवं चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती**-की तरह 200 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है।

* विद्येश्वरसंहिता *

व्यासजी कहते हैं—जो धर्मका महान् क्षेत्र है और जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया। उस ज्ञानयज्ञका समाचार सुनकर पौराणिकशिरोमणि व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन करनेके लिये आये। सूतजीको आते देख वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—

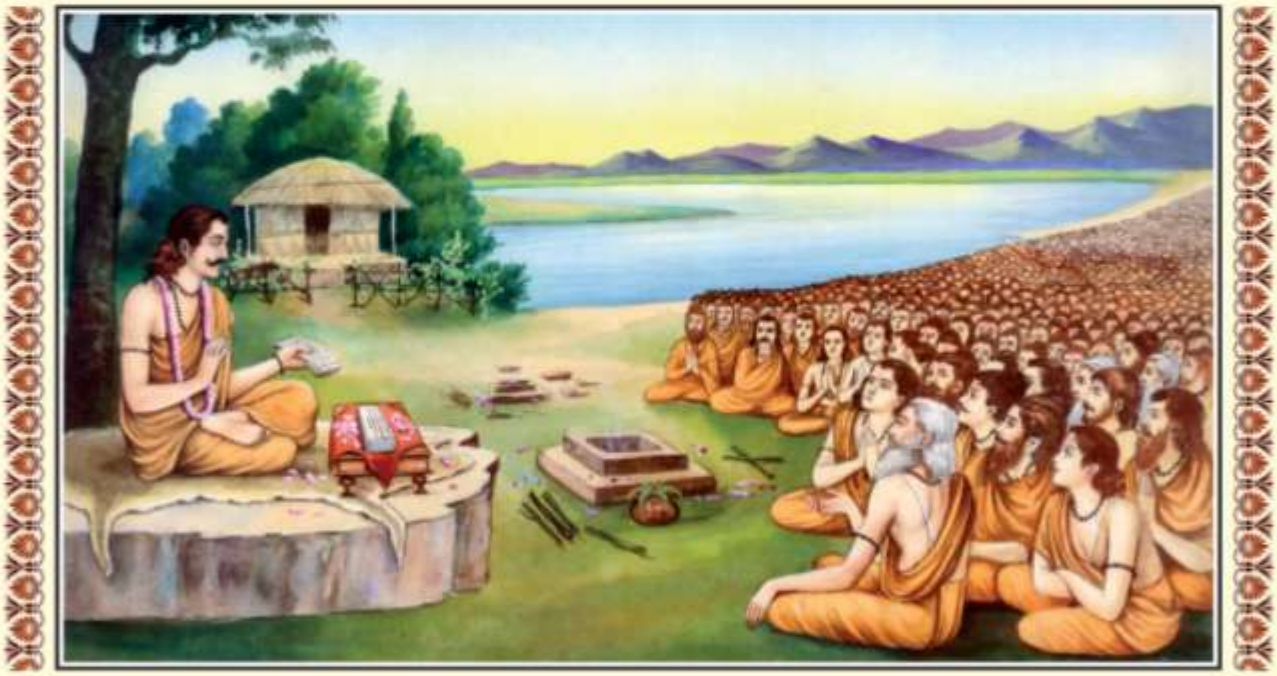

'सर्वज्ञ विद्वान् रोमहर्षणजी! आपका भाग्य बड़ा भारी है, इसीसे आपने व्यासजीके मुखसे अपनी प्रसन्नताके लिये ही सम्पूर्ण पुराणविद्या प्राप्त की। इसलिये आप आश्चर्यस्वरूप कथाओंके भण्डार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रत्नाकर समुद्र बड़े-बड़े सारभूत रत्नोंका आगार है। तीनों लोकोंमें भूत, वर्तमान और भविष्य तथा और भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अज्ञात नहीं है। आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ पधार गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता। हमने पहले भी आपसे शुभाशुभ तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है; किंतु उससे तृप्ति नहीं होती, हमें उसे सुननेकी बारंबार इच्छा होती है।

प्र० ति० 20-01-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

'कल्याण' के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् 2023 ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी सदस्योंको भी भेजा गया है, जिनको सन् 2023 ई० का विशेषाङ्क '**दैवीसम्पदा-अङ्क**' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन सदस्योंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, वे सदस्यता-शुल्क भेजकर रजिस्ट्रीसे अथवा वी०पी०पी० से भी पुन: मँगवा सकते हैं। जिन सदस्योंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी किसी कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर सदस्य बना दें और उनका नाम, पूरा पता, मोबाइल नम्बर तथा अपनी सदस्य-संख्या आदिका विवरण हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित सदस्य बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया सदस्य बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन-हेतु e-mail : **kalyan@gitapress.org/ 09235400242/244** पर सम्पर्क करना चाहिये। इसके अतिरिक्त '**कल्याण**' के विषयमें किसी भी जानकारीके लिये **9648916010/8188054404** पर SMS एवं WhatsApp भी कर सकते हैं।

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे
एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे

आगामी नवरात्रमें गीताभवन, स्वर्गाश्रममें श्रीरामचरितमानसके नवाह्न पाठके यू-ट्यूबपर Live प्रसारणकी शुभ सूचना

प्रत्येक वर्षकी भाँति इस वर्ष भी वासन्तिक नवरात्रमें (**22 मार्चसे 30 मार्च 2023 तक**) गीताभवन, स्वर्गाश्रममें **श्रीरामचरितमानसके सामूहिक नवाह्न पाठ**का आयोजन किया गया है। सभी मानस प्रेमी भाई-बहन पाठमें सम्मिलित होनेके लिये सपरिवार सादर आमंत्रित हैं। जो भाई-बहन यहाँ आकर पाठमें सम्मिलित नहीं हो सकते हैं, उनके लिये यह विशेष व्यवस्था की गई है कि पाठका सीधा प्रसारण **https://youtube.com/@gita-satsang** पर किया जायेगा, जिससे जुड़कर आप घरसे ही गीताभवनमें हो रहे सामूहिक नवाह्न पाठमें सम्मिलित हो सकते हैं और रामायण पाठका लाभ ले सकते हैं।

e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : **gitapress.org**—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवाने के लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)